सनातनधर्मिजनानामुपकाराय आर्यम्मन्यानां

भ्रमनिवारणाय च

कलिकातास्थ विश्वविद्यालयस्थ वेदव्याख्यात्रा

पं० भीमसेनशर्मणा विरचिता

द्वितीयवार	सन् १९१८	मूल्य
१०००	सं० १९७४	।।।)

Printed by Brahma Deva Misra at the

Brahma Press-Eaawah.

अथ श्राद्धमीमांसा प्रस्ताव:

सभी पाठक महाशयों को विदित होगा कि श्राद्ध विषय में दो प्रकार की मीमांसा अपेक्षित है उनमें एक तो श्राद्धविवेक निर्णय-सिन्धु धर्मसिन्धु आदि संग्रह पुस्तकों में अयतक अनेक विद्वानों ने की है जिसका विषय यह है कि श्राद्ध के देश काल पात्र और साधनादि अङ्गों में आस्तिक लोगों को जो जो सन्देह हो सकते हैं उन सबकी व्यवस्था शास्त्रप्रमाणानुसार करदी गई है उस प्रकारकी मीमांसा करना हमारा उद्देश इस पुस्तक में नहीं है। द्वितीय प्रकार की मीमांसा वर्त्तमान समयमें यह उपस्थित हो गई है कि श्राद्ध किसी कर्म का नियत नाम है वा जो कुछ श्रद्धा से किया जाय वह सभी कर्म श्राद्ध कहावेगा ?। क्या श्राद्ध मृतपुरुषोंका होता है वा जीवितोंका भी होसकता है ?। यदि मरों का श्राद्ध होता है तो जो मरे हुये प्राणी लोकान्तर देशान्तर की किन्हीं योनियों में स्वकर्मानुसार जन्म पाचुके हैं उनके पास श्राद्धान्न कैसे पहुंचजाता है ? क्या जिनका श्राद्ध करनेवाला कोई नहीं होता वे भूंखे ही मराकरते हैं ? जब अपने अपने कर्मानुसार सबको ईश्वर फल देता है तब यदि पितादिने अच्छे पुण्य कर्म किये हैं तब तो अपने कर्मानुसार उनको उत्तम भोग प्राप्त होंगे ही, उनकेलिये मरण पश्चात् पुत्रादिक का श्राद्ध करना व्यर्थ है तथा यदि उनके कर्म बुरे हैं जिनके अनुसार उनको ईश्वरीय न्यायसें नरक होना चाहिये तब यदि पुत्रादि श्राद्ध करते हैं तो भी व्यर्थ है क्योंकि ईश्वरके न्यायसे उन को दुःख अवश्य मिलेगा। तथा मूल वेद मन्त्रोंमें मरोंका श्राद्ध करना नहीं कहा इस से मृतकश्राद्ध वेदविरुद्ध है इत्यादि अनेक सन्देह सम्प्रति नास्तिकता बढ़जानेसे कियेजाते हैं।

ऐसे पूर्वोक्त बहुविध सन्देहोंकी निवृत्तिके लिये यह पुस्तक लिखा छपाया गया है। पाठक महाशय! हम यह प्रतिज्ञा नहीं करते कि यावत् सन्देह उत्थित हुए हैं वा कहीं कभी किसी को हो सकते हैं उन सभीका समाधान हम करेंगे किन्तु जितने प्रकार के प्रश्न वा सन्देह हमारे दृष्टिगोचर अबतक हुए हैं उन सबका समाधान हमने

इस पुस्तक में किया है और न होने से वा अन्य लोगोंके छपाये पुस्तकोंसे इसमें श्राद्धसम्बन्धी लेख आप लोगोंको युक्तिप्रमाणोंसे विशेष पुष्ट अवश्य दीख पड़ेगा। इस पुस्तकमें स्मृतिपुराणादि के प्रमाणों का विशेष समावेश इसलिये नहीं किया गया कि श्राद्ध के प्रतिपक्षी लोग स्मृतियों के प्रमाणों को वेदविरुद्ध वा प्रक्षिप्त कहने को तत्पर होजाते हैं इसलिये इस पुस्तक के पूर्वभाग में पितृ शब्द का विशेष व्याख्यान वा अनेक शंकाओंके समाधान दिखाते हुए उन वेदमन्त्रों के प्रमाण अर्थ सहित लिखे गये हैं जिनसे मरे हुए मनुष्यों का श्राद्ध करना सिद्ध होता है, साथ ही प्रतिपक्षी कृत वेद के अनर्थ का खण्डन भी किया गया है। तदनन्तर द्वितीयांश में वादी कृत बहुविध आक्षेपों के युक्तिप्रमाण सहित विचित्र समाधान लिखे गये हैं। अन्तमें श्राद्ध के प्रतिपक्षियों से पूछने योग्य कई प्रश्न लिखे गये हैं कि जिनका उत्तर उन लोगों से नहीं बन सकता। इस प्रकार समयानुसार श्राद्ध-विषय में उत्थित होने वाले कुतर्क जालकी अच्छी मीमांसा इस पुस्तक में की गयी है। आशा है कि पाठक लोगोंको सन्तोषप्रदायक होगी। यदि इसमें कहीं कुछ भूल प्रतीत हो तो पाठक लोग कृपया क्षमा करें और शुद्ध करलेवें॥

॥ इति शम्॥

भीमसेन शर्म्मा-वेदव्याख्याता

श्रीगणेशायनमः ।

अथ श्राद्धमीमांसा

अग्निष्वात्तशब्द पर विचार ।

इस शब्द को कलकत्ते के छपे (शब्दकल्पद्रुमकोश) में दन्त्य सकार से लिखा है यथा—

अग्निस्वात्ताः, पुं०, (अग्निना सुष्ठु यथा स्यात् एवं आत्ताः भक्षिताः, श्रौतस्मार्त्ताग्निदग्धाइत्यर्थः । मन्वादिस्मृतिषु मूर्द्धन्यषकारवान् एव पाठः मूर्द्धन्यादेशस्तु न युक्तः) मरीचिपुत्रपितृगणविशेषः । नित्यं बहुवचनान्तशब्दोऽयम् । इति शब्दमाला ॥

सब महाशय ध्यान रक्खें कि अग्निष्वात्त शब्द वैदिक है लौकिक नहीं, स्मृति पुराणादि में जहां २ यह शब्द आता है वहां २ वैदिक शब्द का ही अनुवाद करके विचार किया है, वेद में सर्वत्र मूर्द्धन्य षकारवान् ही इसको वैदिक लोग लिखते बोलते मानते हैं। यद्यपि व्याकरण में मूर्द्धन्यादेशका सूत्रवार्त्तिक कोई नहीं दीखता तथापि-

दृष्टानुविधिश्छन्दसि भवति । तथा—अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः ॥

व्याकरण के इन दो प्रमाणों के अनुसार मूर्द्धन्यादेश होना युक्त है। इससे (मूर्द्धन्यादेशस्तु न युक्तः) यह लिखना प्रामादिक है। द्वितीय इस पद का कोषकार कृत निर्वचन भी वेद विरुद्ध है तथा निरुक्त के अभिप्राय से और पदपाठ से भी जिस प्रकार विरुद्ध है सो आगे लिखे प्रमाणों से विस्पष्ट हो जायगा। आर्यसमाज के नेता स्वा० दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भूमिका में यों लिखा है कि—

अग्निः परमेश्वरो भौतिको वा सुष्ठुतया आत्तो गृहीतो यैस्ते अग्निष्वात्ताः ।

अग्नि नामक परमेश्वर को वा भौतिक अग्नि को सुष्ठु प्रकार से जिनने स्वीकार किया वे जीवित मनुष्य अग्निष्वात्त कहाये। यह दयानन्दीय अर्थ भी आगे लिखे प्रमाणों से वेद विरुद्ध मनमाना कल्पित सिद्ध किया गया है देखिये-

चातुर्मास्यनामक यागों के तृतीय साकमेध पर्व में महा पितृयज्ञ नामक एक पितृयज्ञ होता है उसका व्याख्यान शतपथ ब्रा० में करते हुए अग्निष्वात्त पद का अर्थ लिखा है कि शतपथ ब्रा० काण्ड० २ अ० ६। ब्रा० १ कं० ७।

यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः॥

सायणभाष्यम्। केवलमौपासनाग्निरेव शरीरान्ते दहन्त्स्वदयति, आस्वादयति, भक्षयतीत्यर्थः। अर्थादकृतश्रौताधानाः कृतस्मार्त्ताधानाः पञ्चत्वमाप्ताः।

भावार्थ-जिन लोगों ने श्रौताग्नियों का आधान न करके केवल आवसथ्य नामक स्मार्त्ताग्निका आधान किया हो उनके मरण समय केवल औपासन नामक स्मार्त्ताग्निने ही जिनके शरीरका स्वाद लिया अर्थात् उस एक गृह्याग्नि से ही जिनका दाहकर्म हुआ वे पितर अग्निष्वात्त कहाये। अब देखिये कि स्वद् धातु से शतपथ ब्राह्मण में ष्वात्त शब्द बना स्वीकृत किया तथा शब्दकल्पद्रुमकोष वाले ने अद् धातु से माना और स्वा० दयानन्द ने आङ्पूर्वक दा धातु से आत्त शब्द बनाया सु उपसर्ग दोनों ने माना। सो यदि सु उपसर्ग इस में वेदाचार्यों को अभिमत होता तो पद पाठ में ऐसा अवग्रह लिखा जाता कि (अग्निष्वात्ताइत्यग्निऽसुऽआत्ताः) सो ऐसा न लिखकर (अग्निष्वात्ताइत्यग्निऽस्वात्ताः) ऐसा अवग्रह पदपाठमें किया गया है इससे सु उपसर्ग मानकर तीर्न पद का अवग्रह करना शतपथ ब्राह्मण और पद पाठ से विरुद्ध होने के कारण वेद विरुद्ध है। तथा निरुक्त अ० १ पा० ६ खं० १ में लिखा है कि-

अवसाय पद्वते रुद्रमृलेति। अवतेर्गत्यर्थस्यासो नामकरणस्तस्मान्नावगृह्णन्ति। अवसायाश्वानिति स्यतिरुपसृष्टो विमोचने तस्मादवगृह्णन्ति॥

भा०-(अवसाय पद्वते०) मन्त्र में आया अवसाय पद गत्यर्थ अव धातु से औणादिक अस प्रत्ययान्त माना गया इसी कारण एक पद होनेसे पदकार महर्षि लोग अवग्रह नाम विच्छेद नहीं करते किन्तु (अवसाय) ऐसा चतुर्थ्यन्त एक ही पद पदपाठ में पढ़ते हैं और (अवसायाश्वान्०) इस मन्त्र में विमोचनार्थ अवपूर्वक सा धातुका ल्यबन्त पद (अवसाय) है इसीसे पदकार लोग इसका अवग्रह नाम विच्छेद ऐसा करते हैं कि-(अवसायेत्यवऽसाय) इस निरुक्त के प्रमाण में पदपाठ को प्रामाणिक मानके तदनुसार पदों का विग्रह करना माना है परन्तु कोशकार और स्वा० दयानन्द इन दोनों का किया अग्निष्वात्त पदका विग्रह पदपाठसे विरुद्ध है इस से दोनों का ही अर्थ त्याज्य है और शतपथ के ही अनुसार पदपाठ होने से वही अर्थ सम्यक् वेदानुकूल होने से ग्राह्य है ॥

जब कि विना मरे कोई भी अग्नि में जलाया नहीं जाता तब वेद में आये अग्निष्वात्त नाम एक ही अग्निसे दग्ध किये गये स्वर्गस्थ मृत पितरों का श्राद्ध होना सिद्ध होगया ऐसी दशा में जीवितों का श्राद्ध कहना ऐसा ही है जैसा मरों का विवाह करना कोई कहे। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्वा० द० की प्रतिज्ञा थी कि हमारा वेदार्थ शतपथादि के अनुकूल होगा सो शतपथ से विरुद्ध होने के कारण प्रतिज्ञा भङ्ग हो गयी ॥

द्विविध पितर।

एक दिव्य पितर हैं जो सप्त प्रकारके गण हैं ये ही दिव्य पितर हैं। सोमसदः। अग्निष्वात्ताः। बर्हिषदः। सोमपाः। हविर्भुजः। आज्यपाः। सुकालिनः। इनमें से अग्निष्वात्त, सोमप और बर्हिषद ये तीनों वाजसनेयी शाखा वाले ब्राह्मणोंके नित्य तर्पणमें लिये हैं इन के नाम से नित्य तर्पण करना चाहिये तथा महापितृयज्ञादि के समय भी ये पूज्य हैं। हविर्भुज पितर क्षत्रियों के, आज्यपा वैश्यों के

और सुकालिन पितर विशेष कर शूद्रोंको समय २ पर तर्पण पिण्ड-दानादि से पूज्य हैं। द्वितीय प्रकारके मानुष पितर कहाते हैं पर ध्यान रहे कि पितृ शब्दका अर्थ यहां श्राद्ध तर्पण के प्रसंग में उत्पा-दक पितादि नहीं है किन्तु—

तातास्वास्त्रितयं सपत्नजननी, मातामहादित्रयम्,
सस्त्रिस्त्रीतनयादितातजननी स्वभ्रातरः सस्त्रियः।
तातास्वात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः,
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधो तीर्थे तथा तर्पणे ॥

संग्रह ग्रन्थ में यह लिखा है —

पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, सौते-ली माता मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह मातामही, प्रमाता-मही, वृद्धप्रमातामही, स्वपत्नी, स्वपुत्र, स्वकन्या, पितृव्य, नाम चाचा मामा, स्वभ्राता, चाची, मामी, भ्रातृजाया, पितृभगिनी, [बुआ], मातृभगिनी [मौसी], श्वशुर, गुरु शिष्य, मित्र ये सब कनागतों के समय, तीर्थ में और तर्पण करने में पितर कहाते हैं। पार्वणश्राद्ध में वा पिण्डपितृयज्ञके समय पितृपितामह, प्रपितामह, माता, पिता-मही, और प्रपितामही. ये विशेष कर पितर कहाते और मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह। मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमाता-मही ये भी पितर कहाते हैं। जब कि पूर्वोक्त कन्या पुत्रादि तक पितर कहाते हैं तब यहां उत्पादक अर्थ लेना नहीं है किन्तु ये सब पितृयोनि को प्राप्त होने के कारण रक्षा करने वाले होने से पितर कहाते हैं॥

इस अंश पर और भी विशेष विचार यहां दिखाते हैं सो यह वि-चार इसलिये उठा है कि सम्प्रति कुछ लोग परोक्षवादरूप आस्तिक सिद्धान्तको नाम मात्र मानते भी वस्तुतः न मानते हुए कहते हैं कि श्राद्धकर्म में पूज्य पितर भी येही प्रत्यक्ष जीवित पितादि हैं। इसी पर हमको विचार करना है कि पितर कौन हैं? पितृ शब्द के प्रयोग विषय में प्रकरणानुसार दो प्रकार का अर्थ वेदादि सर्व शास्त्रों में

प्रतीत होता है एक तो प्रत्यक्ष जीवित पिता वा पितृ सदृश लोग पितर कहाते हैं जैसे-

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यांप्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पंचैतेपितरःस्मृताः ॥

यह स्मृति रक्षा करने वाले होनेसे जनकादिको पितर बताती है

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।

वेदका दान करनेवाला होनेसे आचार्यको पितर कहते हैं अन्यत्र पिता भवति मन्त्रदः। अच्छा उपदेश शिक्षा विद्यादाता पिता है, तथा-

मानोवधीः पितरं मोतमातरम् ।

इस श्रुति में भी जीवित ही माता पिता का ग्रहण है परन्तु इत्यादि सब श्रुति स्मृति श्राद्ध से भिन्न प्रकरण की हैं ।- अब शोचना यह है कि श्राद्ध में पितर कौन कहाते हैं ? । कोई लोग परोक्ष लोकान्तरस्थ पितरों को मानते भी हैं तो वे कहते हैं कि वे सनातन पितर हैं जो यहांसे मर२ के जाते हैं वे नहीं और श्राद्ध प्रकरण में भी जीवित प्रत्यक्ष पितर लिये जाते हैं इस के लिये प्रमाण देते हैं । तथा च मनुः-

अक्रोधनान् सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ।
लोकस्याध्यायनेयुक्तान्श्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ।म०३।२१३

अर्थ-क्रोध रहित प्रसन्न मुख संसार की उन्नति उपकार करने में तत्पर ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध के प्राचीन देवता कहाते हैं । मनुस्मृति में श्राद्ध प्रकरण का यह श्लोक है इस में विद्यमान जीवित ब्राह्मणों को श्राद्ध का देव कहा है और तुम कहते थे कि श्राद्ध प्रकरण में जीवितों का ग्रहण नहीं है सो ठीक नहीं रहा ।

-इसका उत्तर यह है कि वर्त्तमान आ०स० के अधिकांश मनुष्यों ने अबतक मूल सिद्धान्त यह मान लिया है कि हमने जिसको अच्छा समझ लिया वही अच्छा और जो हमारी समझ से विरुद्ध है वही त्याज्य है । इसके अनुसार कोई २ यहां तक कहते हैं कि श्राद्धादि वेद से भले ही सिद्ध हो जांय, वा ईश्वर स्वयं आकर कहे कि श्रा-

द्धादि ठीक २ गन्तव्य वा कर्त्तव्य है अथवा किसी प्रकार स्वा० द० जी फिर से लौट कर आवें और कहें कि हम भूल गये थे श्राद्धादि सब ठीक हैं तो भी हम कदापि नहीं मानेंगे। उक्त मूल सिद्धान्त की रक्षा वा पुष्टि ये लोग तीन प्रकार से करते हैं।

१-एक तो ग्रन्थोंके जो वचन इनकी समझ से विरुद्ध हैं उन का प्रकणादि से विरुद्ध मनमाना अर्थ करके साधारण बुद्धिवालों को भ्रम में डाल देना। २-द्वितीय वेदविरुद्ध कह देना अर्थात् अपनी समझ से विरुद्ध प्रमाणको वेद विरुद्ध कहा तो इनकी समझही इन लोगोंका वेद ठहर गया। ३-तृतीय जहां कुछ उपाय न दीख पड़ा वहां उस वचन को प्रक्षिप्त कह देना कि किसी ने मिला दिया है। इसीके अनुसार मनु के उक्त श्लोक का आशय प्रकरण विरुद्ध मान लिया है। मनु के श्लोक का मुख्य आशय यह है कि श्राद्ध में देव और पितर दोनोंका पूजन आराधन होता है। श्राद्ध विधि में पिण्ड दान से पूर्व श्राद्धका अङ्गरूप देवताओं के लिये दो आहुति देने का विधान सर्वत्र किया है मनु में मुख्य बड़ा प्रकरण श्राद्ध का है उस के अन्तर्गत २०३ श्लोक से अवान्तर प्रकरण देवकार्य का है। २१२ श्लोक में कहा है कि "अग्न्यभावेतु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्" पिण्डदान से पूर्व देव-पूजा की आहुति देने के लिये अग्नि प्राप्त न हो तो वे दोनों आहुति (प्रत्यक्ष) ब्राह्मण के हाथ में दे देनी चाहिये। इस विधिवाक्य की पुष्टि के लिये उक्त २१३ श्लोक में प्रत्यक्ष जीवित ब्राह्मणों की प्रशंसा रूप अर्थवाद कहा है कि जगत् के उपकारी क्रोध रहित ब्राह्मण श्राद्ध के पुराने देवता हैं इनके हाथ में मन्त्र पढ़के आहुति दे देने से भी श्राद्ध का अंग देव कर्म पूरा हो जाता है। इस प्रकार उक्त श्लोक में जीवितों का ग्रहण करना तो ठीक है परन्तु वे जीवित श्राद्ध के पितर नहीं हैं इसी लिये पितर नहीं कहे किन्तु श्राद्ध के देव कहे हैं सो ठीक ही है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि श्राद्ध में जीवित पितरों के ग्रहणार्थ यह मनु का प्रमाण नहीं है तथा अन्य भी कोई प्रमाण नहीं है यदि कहीं मिला भी तो ऐसा ही होगा जिसका प्रकरणानु-सार ठीक अर्थ होनेसे श्राद्धकेपितर जीवित सिद्ध कदापि नहीं होंगे।

१-पितृयज्ञ वा श्राद्ध में पितर कौन हैं उनका लक्षण वा स्वरूप क्या है ? । २-श्राद्ध परोक्ष मृत पितरों का ही क्यों होता है जीवितों का क्यों नहीं होता ? ॥

इत्यादि कुतर्कोंका उत्तर हम क्रमशः प्रबल प्रमाणों और दृढ़ पुष्ट युक्तियों द्वारा आगे २ लिखेंगे पाठकलोग बराबर विचारपूर्वक देखें।

अब पहिली बात यह है कि पितृयज्ञ वा श्राद्ध में पितर कौन है? उनका लक्षण वा स्वरूप क्या है ? ।

पितृयज्ञ वा श्राद्ध में पितर वे ही मानने वा समझने चाहिये जो श्राद्ध के मन्त्रार्थों से सिद्ध हों। मन्त्रों से ही उनके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। पाठक लोग इस सामान्य नियम पर विशेष ध्यान रक्खें कि-लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः। प्रत्येक प्रत्यक्ष वा परोक्ष तथा सूक्ष्म वा स्थूल वस्तु के स्वरूप का बोध लक्षण और प्रमाणों द्वाराही होता है। प्रत्यक्ष स्थूल पदार्थों का भी यथार्थ स्वरूप बोध लक्षण और प्रमाण के विना नहीं होता जैसे कोई कहे कि प्रत्येक प्राणी के शिर में दो आंखें होती हैं उन्हीं का नाम चक्षु है तो इसमें दो भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं एक तो आंखों की पुतली देखने में ज्यों की त्यों बनी हों परन्तु देखने की शक्ति मारी गयी हो तो वह चक्षुहीन अन्धा कहावेगा। तथा किसी ने बनावटी आंखें लगाली हों जो ठीक २ असली आंखों के तुल्य हों तो लक्षण प्रमाण से निश्चय किये विना उन दोनों प्रकार के मिथ्या चक्षुओं को भी आंखें मान लेगा इस दशा में उसको चक्षु के स्वरूप का बोध होना नहीं माना जायगा। परन्तु चष्टे पश्यत्यनेन तच्चक्षुः। जिससे रूप को देखता है वह चक्षु कहाता है यह लक्षण और "चक्षुश्च द्रष्टव्यंच" चक्षु का विषय रूप देखना है यह श्रुति का प्रमाण ठीक जान लेगा तो जिससे रूप न दीख पड़े वह चक्षु नहीं किन्तु जिसके द्वारा रूप को देख सकते वा जिस का विषय रूप को देखना है वही चक्षु है। जब बनावटी आंखों से वा जिनकी दर्शन शक्ति मारी गयी उनसे रूप नहीं दीखता तो वे चक्षु नहीं ठहरेंगे उनका खण्डन लक्षण प्रमाण द्वारा होकर चक्षु के ठीक स्वरूप का बोध हो जायगा। प्रसिद्ध में जो हाथ कहाते है उन्हीं को

हस्त मानें तो "महान् लम्बीभूतः प्रशस्तो वा हस्तोऽस्यास्तीति हस्ती" बड़ा लम्बा वा प्रशंसा के योग्य जिसका हाथ हो उसका नाम हाथी है यह ठीक नहीं बनेगा क्योंकि हमने पांच अंगुलियों वाले अङ्ग का नाम हाथ समझ रक्खा है। परन्तु प्रमाण से सिद्ध है कि "हस्तौ चादातव्यं च" जिसका विषय पदार्थों का ग्रहण करना पकड़ना है उसका नाम हाथ है हाथी भी सूंड़ के द्वारा ही सब चीजों को पकड़ता है। इसी से वह उसका हाथ है और उस हाथ वाला होने से वह हाथी है इसके अनुसार पशु आदि के मुख का नाम हाथ और मुख दोनों पड़ेगा क्योंकि वे मुख से पकड़ते हैं किन्हीं पंजे से पकड़ने वाले पक्षियोंके पग भी हाथ मानें जांयगे। जिससे खड़े हो सकें वा चल सकें वे पग कहाते हैं।

क्योंकि (पादौच गन्तव्यञ्च) पगका विषय गमन है वृक्ष अपनी जड़ोसे खडे रहते हैं इससे वेही उनके पग हैं और पगों द्वाराही खाते पीते ह इसलिये संस्कृतमें वृक्ष पादप कहाते हैं। इन सब दृष्टान्तोंसे हमारा प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष वा प्रसिद्धिमात्र होने पर भी हमको जब स्थूल पदार्थों के स्वरूप का ही यथार्थ बोध नहीं होता तो सूक्ष्म वस्तुओं का बोध विना लक्षण प्रमाण के होजावे यह कदापि सम्भव नहीं है। और पितर जो श्राद्धमें लिये जाते हैं वे सूक्ष्म तथा परोक्ष हैं। यह भी स्मरण रहे कि लक्षण सदा ही प्रमाणानुकूल मानने पड़ेगा जो प्रमाणसे विरुद्ध होगा वह लक्षण नहीं होगा किन्तु लक्षणाभास कहावेगा। वेद का वा वेदानुकुल ग्रन्थों का प्रमाण निर्विकल्प सर्वोपरि माना जायगा। यही आस्तिक लोगोंकी आस्तिकता का चिन्ह है। पितरों का लक्षण यह है कि "पुत्रादीन् पान्तीतिपितरः" पुत्रादि की रक्षा करने वाले पितर कहाते हैं ? प्र० यहीतो हम भी कहते हैं कि पालनकरने वाले पितर कहाते और पालन करना जीवित विद्यमानोंमेंघटता है मरोंमें घटनहीं सकता इसलिये जीवितोंको पितर मानो उ०मरोंका अर्थ सूक्ष्म मानना पड़ेगा क्योंकि अभाव किसी वस्तु का नहींहोता स्थूल शरीर सूक्ष्मदशामें परिवर्तित होजाय यही मरना कहाता है वा जीव और स्थूल शरीर के वियोगका नाम मरना है।

इस दशामें स्थूल ही पालन करने वाला है सूक्ष्मसे पालन नहीं होता यह कहना युक्ति प्रमाण विरुद्ध है पृथिव्यादि की अपेक्षा वायु सूक्ष्म है " वायुः पालयति प्रजाः " वायु सब प्रजाकी रक्षा पृथिव्यादिकी अपेक्षा अधिकर इसलिये करता है कि अन्न जल न मिलनेसे जितने काल जीवन रह सकता है उतने काल वायु न मिलने से जीवन नह ठहर सकता। और सूक्ष्म अदृश्य परमेश्वर सर्वोपरि सबका रक्षक पालक होनेसे पिता है। इस से सिद्ध है कि स्थूल वस्तु परिमित देशकाल में रहने वाला होने से उतने थोड़े ही देशकाल में रक्षा कर सकता है और सूक्ष्म अधिक देश काल में रहने वाला होने से बहुत अधिक देश कालमें रक्षा कर सकता है। इससे सूक्ष्म मुख्य रक्षक वा पितर हैं और स्थूल उस की अपेक्षा गौण रक्षक वा पितर हैं। तथा यह भी नियम विद्यमान ही है कि " गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य-सम्प्रत्ययः " गौण और मुख्य दोनों के ग्रहण होने की सम्भावना में मुख्य का ग्रहण होने से जीवित गौण पितर नहीं लिये जायंगे किन्तु मुख्य सूक्ष्म पितरोंका ग्रहण होगा। (प्र०) यदि हम सूक्ष्मोंको ही मुख्य पितर मान भी लें तो सूक्ष्म पितर वायु आदि सूक्ष्म तत्त्व क्यों नहीं ग्रहण किये जांय ?। उ०-सूक्ष्मों का मुख्य होना तो युक्ति प्रमाण सिद्ध होने से तुमको मानना ही पड़ेगा सूक्ष्म पितर वायु आदि तत्त्व इससे नहीं लिये जांयगे कि वे पितरों का निरूपण करने वाले मन्त्रों से विरुद्ध हैं। सूक्ष्म पितर (पालन करने वाले) वे ही गृहीत होंगे जो मन्त्रार्थों से सिद्ध हों। प्र० तुमने पितरों का स्वरूप बोध नहीं कराया कि वे सूक्ष्म पितर कैसे हैं। उ०-सूक्ष्म अदृश्य पदार्थों को कोई आंखों से नहीं दिखा सकता न हाथ में पकड़ा सकता है पितर तो दूर हैं तुम अपने मन बुद्धि चित्त अहंकार को ही साक्षात् नहीं करा सकते। हम लक्षणों द्वारा वा प्रमाणों द्वारा जिस प्रकार सूक्ष्म वस्तु का स्वरूप बोध कराया जा सकता है वैसा कराने के लिये आगे २ यथाशक्ति लेख करेंगे। अब हम यहां कुछ प्रमाणोंको लिखते हैं जिससे ज्ञात होगा कि पितर कौन हैं ?।

अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीन्मासिमासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥ शत० कां० २ अ० ३। ब्रा० ४। कं० २॥

अर्थः—सृष्टि के आरम्भ में जब सब लोक लोकान्तरस्थों की व्यवस्था परमात्मा ने की तब पितर लोग जनेऊ को अपसव्य कर बांया (जानु) घोंटू पृथिवी में लगा के प्रजापति के सन्मुख जाकर बैठे तबउनसे प्रजापतिने कहा कि महीने२ भरमें एकवार अमावस्या को तुम्हारा भोजन होगा [यह भी स्मरण रहे कि मनुष्य के एक महीने का पितरों का एक दिन रात सब शास्त्रों में माना गया है। इसलिये कृष्णपक्ष रूप रात्रि की समाप्ति में प्रातःकाल अमावास्या के समय पितरों को अपने दिन के हिसाब से नित्य भोजन मिला मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भोजन मिलना कहा गया है] तुम्हारे लिये कर्मकाण्ड में स्वधा शब्द बोला जायगा। वह स्वधा पद वाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मन के तुल्य वेग वाला होगा। और चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा। इस कथन से यह आया कि अपसव्य रहने, बायां घोंटू टेक के बैठने वाले, महीने २ में अमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तथा चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे पितर हैं। वा जिन का नाम पितर है वे अपसव्य रहने वाले आदि हैं। मनुष्य प्रतिदिन भोजन करते हैं और पितर महीने में एकवार अमावास्या को भोजन करते हैं इस कारण पितर मनुष्य नहीं होसकते किन्तु मनुष्योंसे प्रथक् हैं। तथाच—

तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यः।

शतपथ २। ३। ४। २१॥

सूक्ष्म होनेके कारण वा यथेच्छाचारी होने के कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य अर्थात् छिपे से होते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जो सूक्ष्म अदृश्य हैं जो सर्वसाधारण मनुष्योंके दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर मनुष्योंसे भिन्न हैं क्योंकि मनुष्योंको मनुष्य दीखते हैं। परन्तु

पूर्ण शुद्ध पूर्ण श्रद्धा भक्ति युक्त, पूर्ण धर्मात्मा को पितर साक्षात् भी दीख पड़ते वा दर्शन देते हैं इस बात को जताने के लिये श्रुति में इव शब्द कहा है। यह भी ध्यान रहे कि शतपथ ब्राह्मण के उक्त दोनों प्रमाण श्रौत कर्मों सम्बन्धी पिण्ड पितृयज्ञ प्रकरण के हैं इस कारण महीने २ में एक वार भोजन पितरों को पिण्ड पितृयज्ञ द्वारा मिलता है किन्तु पञ्च महायज्ञादि नित्यकर्म जो अन्य श्रुतियों से विहित है उसके नित्यश्राद्ध वा नैत्यिक पितृयज्ञ द्वारा सामान्य पितरोंको नित्य भोजन मिलता है उसका यहां खण्डन नहीं है।

अहरहः स्वधाकुर्यादोदपात्रात्तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति। शतप० का० ११। प्र० ३। ब्रा० ८। कं २

नित्य २ अन्न वा फलमूलादि के अभाव में जलमात्रसे भी (पितृभ्यः स्वधानमः) कहकर पितरों के लिये जल छोड़ने मात्रसे भी पितृयज्ञ पूरा होजाता है। इस प्रकार मासिक पिण्ड पितृयज्ञ द्वारा महीने २ में एक वार पितरों को भोजन प्राप्त होना और नित्य पितृयज्ञ द्वारा नित्य२ भोजन मिलना दोनों ठीक हैं, परस्पर विरुद्ध नहीं, क्योंकि—श्रुति द्वैधन्तु यत्रस्यात्तत्रधर्मावुभौस्मृतौ। इस मनु अ० २ के कथनानुसार श्रुति प्रमाण की प्रबलता से मासिक और नित्य दोनों प्रकार के पितृयज्ञ कर्त्तव्य कोटिके धर्म हैं।

दक्षिणाप्रवणो वै पितृलोकः। शतप० १३। ४। ४। ७॥

दक्षिण की ओर झुका हुआ पितृलोक है। अर्थात् देव मनुष्य और पितरोंके लोक अलग २ स्वतन्त्र हैं। शतपथ १३। ४। ४। ५।

उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्यां ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारैवैनं पितृलोकं प्रपादयति॥

यहां शतपथमें श्मशान बनाने का विधान है इसके लिये कहा है कि ग्राम नगरादि से पूर्व दक्षिण दिशा के बीच आग्नेय कोणमें चतुष्कोण वेदि बनावे। क्योंकि इसी आग्नेय दिशा में पितृलोकका द्वार है। ऐसा श्मशान बनाने वाला इस मृतक को द्वार के मार्ग से पितृलोक को पहुंचाता है।

तत्पितृलोका ज्जीवलोकमभ्यायन्ति ।

शतप० कां० १३ । प्र० ४ । ब्रा० ७ कं- ६ ।

पितृलोक से जीवलोक में नाम मनुष्यलोक में आते हैं। इस कारण भी पितरों का लोक मनुष्यलोकरूप पृथिवी से भिन्न सिद्ध है पितृलोक का राजा यमराज है। तथा–ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । यजुर्वेद वाजसने० अ० १६ । मं० ४५ ।

जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एक से अन्तःकरणों वाले पितर यम देवता के राज्य में रहते हैं। तथा——

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् । वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ अथर्व० कां० १८ । अनु- ३ मं० १३ ।

अर्थ–महाप्रलयानन्तर होने वाली सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है। और मरणानन्तर जो इस पितृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मर २ के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण वह जनों का संगमन कहाता है (सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सन्निधौ स संगमनस्तम्) उस विवस्वान्के पुत्र यमराजाका हे मनुष्यो ? हविर्यज्ञ द्वारा पूजन करो। जैसे पितर सनातन हैं अर्थात् मनुष्योंके समान थोड़े २ कालमें उनका जन्म मरण नहीं होता वैसे पितरोंके वा मरकर पितृलोक में जाने वालोंके राजा यमराज भी पितृलोक में जाने पश्चात् अस्मदादि की अपेक्षा सनातन कहाते हैं। कभी जिनका नाश न हो ऐसे तो वायु आदि सूक्ष्म तत्त्व भी नहीं हैं क्योंकि महाप्रलयके समय वे भी नहीं रहते इससे सापेक्ष नित्य वा सनातन सूक्ष्मतत्त्वों के तुल्य पितर भी हैं जैसे मनुष्य का शरीर पृथिवी तत्त्व प्रधान है और स्थूल है वैसे पितृलोक के राजा यम का और पितरों का शरीर वायु तत्त्व प्रधान है जैसे मनुष्य देहों का अधिष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहों के साथ भी एक २ जीव अधिष्ठाता होता है ॥

अपेमं जीवा अरुधन्गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि-ग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्योगमयांचकार ॥ अथर्व का०- १८ । २ । २७ ।

अ० हे जीवा जीविता जना इमं मृतं देहं गृहेभ्यः पृथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रामात्परि--बहिर्निर्वहत नयत। प्रचेताः प्रकृष्टबुद्धिर्मृत्युर्यमस्य दूतआसीदस्ति स मृतस्यासून् पितृभ्यः पितृभावाय गमयांचकार गमयति। वर्तमाने लङ्लिटौ ॥

भा०--हे जीवित पुरुषो! इस मरेहुए मुरदा शरीरको घरोंसे बाहर निकालो और उसको इस ग्राम से बाहर लेजाओ। यमराज का दूत बड़ा बुद्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर बनाने के लिये यमलोक वा पितृलोक में पहुंचाता है॥

अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु ॥ अथर्व १८ । ४ । ४८ ॥

अर्थ--और मरे हुए मनुष्य पितरों में (पितृयोनि में) उत्पन्न हों इससे सिद्ध है कि मरकर पुण्यात्मा लोग पितृलोकमें जाते हैं। पितृ लोक अन्तरिक्ष लोकान्तर्गत है। तथाच प्रमाणम्——

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ अथर्वका० १८अनु०३म० ५९ ॥

अर्थ--जो हमारे पिताके पितर वा पितामहादि तथा प्रपितामहादि कि जो मरणानन्तर महान् अन्तरिक्ष लोकस्थ पितृलोक में प्रवेश कर चुके हैं उन हमारे पितरों के लिये प्राणों का लेजाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देवे। पितृलोक अन्तरिक्षस्थ है यह सिद्ध है। तथाच——वात्स्यायन भाष्यम्——

आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि।

न्यायद० ३ । १ । २८ ।

पृथिवीसे भिन्न लोकान्तरोंमें जलतत्त्व अग्नितत्त्व और वायुतत्व प्रधान शरीर होते हैं। पितृलोकके पितृ शरीर वायुतत्त्वप्रधान होते हैं और वायु इन चर्म चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होता इसी कारण पितर भी इन चक्षुओं से सबको नहीं दीखते——

उदीरतामवर उत्परासः उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं यईयुरवृकाऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥
यजुर्वेद वाजसने० १९। ४९ ॥

अ०—अवरेऽस्मिन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वलोकं गच्छन्तु। मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितर उदीरतां परासः परलोके द्युलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितर उदीरतां ततोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छन्तु कीदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशीलाः सोमपानार्हा वा। ये चासुमीयुर्वायुरूपं प्राप्ता वायुकायाः सूक्ष्मादृश्यास्थूलविग्रहाः। अवृकाः शत्रुभावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठा वा ते नोऽस्मान्हवेष्वाह्वानेष्ववन्तु रक्षन्त्विति प्रार्थयामः॥

भा०—(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले (पितरः) पितर लोग (उदीरताम्) ऊपरी स्वर्गादि लोक को प्राप्त हों (सोम्यासः) शान्ति शील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य अन्तरिक्ष लोकस्थ पितर (उदीरताम्) ऊर्ध्व गतिको प्राप्त हों और (परास, उत्) स्वर्ग लोकस्थ पितर उस से भी ऊपर महर्लोकादि को प्राप्त हों वे पितर कैसे हैं कि (असुं य ईयुः) जिन्होंने प्राण मात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य शरीर वाले, मनुष्यादि का सा स्थूल शरीर जिन का नहीं हैं (इस मन्त्र का यही अर्थ निरुक्त दैवत काण्ड अ० ११ पाद २ खण्ड १८ में किया गया है जिस से स्थूल देहधारी पि-

तर नहीं यह सिद्ध है) (अनृकाः) जिन का कोई शत्रु नहीं (ऋतज्ञाः) जो सत्य को वा यज्ञ को जानने वाले हैं वे पितर कहाते हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) हमारी (हवेषु) श्राद्धादि में आवाहन के समय (अवन्तु) रक्षा करें यह हमारी प्रार्थना है। पाठक महाशयो ! इस मन्त्र से तीनों लोक में रहने वाले वायुमात्र शरीर धारी पितर सिद्ध होते हैं जिस से श्राद्ध तर्पण के प्रसंग में स्थूल देहधारी जीवित पितर मानने वालोंका खण्डन हो जाता है॥

प्रश्न–तुम ने पितरों का लक्षण वा स्वरूप बताने की प्रतिज्ञा की थी सो अबतक पितरोंका लक्षण वा स्वरूप क्या बताया वा दिखाया जिससे ठीक समझ में आता।

उत्तर–हम ने अबतक बहुत प्रकार से लक्षण वा पितरों के स्वरूप युक्ति प्रमाणों द्वारा दिखाये हैं जिस का सारांश यह निकला कि पितर स्थूल देहधारी मनुष्य नहीं किन्तु सूक्ष्म अदृश्य प्राणमात्र शरीर वाले हैं यह सिद्ध हुआ–यदि तुम वेदादि के उक्त प्रमाणों को मानते हो तब तो ऊपर लिखे अनुसार पितरों के लक्षण तथा स्वरूप अवश्य मानने पड़ेंगे। क्या तुम प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहते हो ?। तब उत्तर यह है कि–अभी तुमने अपने श्रीमुख से यह मत प्रकाशित नहीं किया कि हम प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं। सूक्ष्म अदृश्य परोक्ष पदार्थों को नहीं मानते जब तुम केवल प्रत्यक्षवादी अपने को लिख दोगे तब अन्य प्रकारसे उत्तर दिया जायगा। जबतक ऐसा प्रकाशित न करोगे तबतक हम परोक्षवादी मानकर उत्तर लिखते हैं। यदि कहो कि सूक्ष्म पितर होने की दशा में ही मनुष्य पशु पक्षी आदि में से किस आकृति वाले पितर हैं हम यह जानना चाहते हैं तो उत्तर यह है कि पितर एक प्रकार के देवता हैं।

माध्यमिको देवगण इति नैरुक्ताः निरु० अ० ११ खं०१९

अन्तरिक्ष स्थान में विशेषतया रहने वाले देवगण पितर कहाते हैं। तुम यदि जीवित मनुष्योंको पितर मानते हो तो क्या वे अन्तरिक्ष में कहीं टांगे जाते है ? यदि कहो कि पृथिवी में केवल पग

धरते हैं बाकी शरीर सब अन्तरिक्ष में ही चलता फिरता है तो उत्तर यह होगा कि—

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ १ ॥

स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः ॥२॥ अथर्व० १८।४।७८॥

इन मन्त्रों में पृथिवी और अन्तरिक्ष दोनोंमें रहने वाले पितर अलग २ कहे हैं तब पृथिवी में रहनेवाले किनको कहोगे ? यदि तहखाना आदि में रहने वालों को पृथिवी में रहने वाले कहो तो उनके भी शिर आदि अन्तरिक्ष नाम पोल में रहेंगे फिर वे अन्तरिक्ष में रहने वाले क्यों नहीं हुए? क्या पृथिवी में गाड़े हुओं को पृथिवीषद् मानोगे ?। अस्तु प्रयोजन यह है कि अन्तरिक्ष में विशेषतया रहने वाले देवगण पितर कहाते हैं। अ० ३ में मनु जी भी लिखते हैं कि [पितरः पूर्व देवताः] पितर पहिले देवता हैं। निरुक्त के दैवतकाण्ड में देवतों का ही वर्णन है इसी से उत्तर षट्क का नाम दैवत काण्ड रक्खा गया हैं। इसी दैवतकाण्ड में पितृगणों का वर्णन होने से भी सिद्ध है कि देवतों का ही एक अवान्तर भेद पितर कहाता है। जैसे मनुष्य एक सामान्य जाति का नाम है मनुष्य जाति के अवान्तर भेद ब्राह्मण क्षत्रियादि हैं। वैसे ही देवता एक सामान्य जाति है उसके अवान्तर भेद देव, पितर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, राक्षस पिशाचादि हैं। इससे पितर भी एक प्रकार के देवता हैं। जैसे प्राण शब्द पांच वा दश का सामान्य नाम भी है और नासिका द्वारा बाहर को निकलने वाले एकविध वायु का नाम विशेष कर प्राण है। वैसे ही सामान्य पितर आदि सब का नाम देवता है और इन्द्रादि विशेषों का नाम भी देवता है। जैसे सब मनुष्योंकी सामान्य बनावट वा स्वरूप एकसा है वैसे ही पितर आदि सब देवताओं का स्वरूप भी एक ही प्रकार का सामान्य कर माना जायगा। अब यह विचार करना है कि देवताओं का स्वरूप कैसा है ?।

स न मन्येतागन्तूनिवार्थान्देवतानां प्रत्यक्षदृश्यमेतद् भवति। माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा ब-

हुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति। अपि च सत्वानां प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः। प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मान आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माऽश्व आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य॥ निरु० ०अ०७। पा० १ ख०५॥

भा०-[आगन्तूनिवार्थान्] जैसे मनुष्यों के घोड़े आदि स्थूल पार्थिव मांस हड्डी चर्म रुधिरादि युक्त नाश वाले अनित्य होते हैं तब अनित्य होनेसे उनकी स्तुति व्यर्थहै [प्रत्यक्षदृश्यमेतद् भवति]मनुष्य घोड़े आदि से अपने काम निकालते सुख प्राप्त करते दुःखों से बचते हैं। वैसे ही इन्द्रादि के हरि आदि अश्व लिखे हैं इसलिये देवता भी मनुष्यों के से ही सामान रखते होंगे देवतों के भी अनित्य सामान नष्ट हो जाते होंगे तब उनको मनुष्यों के तुल्य दुःख भोगने पड़ता होगा इत्यादि देवताओं के विषय में (स न मन्येत) वह बुद्धिमान् शिष्य ऐसा न मानें (देवताया माहाभाग्यात्) देवता लोग महान् ऐश्वर्य्यका भोग करने वाले हैं वैसा महान् ऐश्वर्य मनुष्यका नहीं है, वह महान् ऐश्वर्य स्वभाव से देवताओं के निकट आठ प्रकार का सदाही विद्यमान रहता है। १-अणिमा-अत्यन्त सूक्ष्म होजाना जो किसीको न दीख पड़ें। २-महिमा। पहाड़ोंसे भी अधिक जितना चाहें बड़ा हो जाना। ३-गरिमा अत्यन्त भारी होजाना जो किसी से न उठें। ४-लघिमा-अत्यन्त हलका होजाना जिससे आकाशमेंउड़ जांय, ५-प्राप्ति एकस्थानमें बैठे सहस्र कोशके किसी पदार्थको प्राप्त करलेना। ६-प्राकाम्य-जिस कामना को चाहें सिद्ध करलें जल के समान भूमिमें घुस जावें तथा उछल आवें। ७-ईशित्व जब जब चाहें जिस पर अधिकार जमालें। ८-वशित्व जिसको चाहें वश करलें। इस कारण अग्नि आदि एक २ देवता बहुत प्रकार के नाम और गुणों से वेदमें स्तुति किया जाता है॥

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्॥ योगसूत्र पा० १ सू० १९

व्यासभाष्यम् । विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः । ते हि स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन कैवल्यपदमिवानुभवन्तः स्वसंस्कारविपाकं तथाजातीयकमतिवाहयन्ति ॥

भा०—समाधि दो प्रकार का है । उनमें श्रद्धादि उपाय द्वारा मनुष्य योगियों का समाधि सिद्ध होता और देवता लोग भव नाम जन्म से ही (देवयोनि प्राप्त होने मात्र से ही) सिद्ध योगी समाधि को प्राप्त हो जाते हैं । अन्नमयादि कोष का नाम देह (स्थूल शरीर) है उससे विगत रहित होने से देवता विदेह कहाते हैं ॥

वे देवता लोग अपने शुभकर्म जन्य शुद्ध संस्कार मात्रके उपयोग से मोक्ष का सा आनन्दानुभव करते हुए फिर फिर भी संसार में आकर कल्पान्तोंमें जन्म लेते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि देवता विदेह नाम स्थूल शरीर से रहित और स्वभाव से ही योग सिद्धियों को प्राप्त हैं जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं । तथा—

रूपंरूपं मघवा बोभवीति ऋ० ३ । ३ । २ । ३

छोटा बड़ा हलका भारी पशु पक्षी मनुष्यादि अनेक रूपों वाला इन्द्र हो जाता है इत्यादि कथन से भी इन्द्रादि देवताओं का सिद्ध होना प्रकट है । (एकस्यात्मनः) अग्नि आदि एक प्रधान देवता रूप के (अन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति) अग्नि की अपेक्षा इन्द्रादि और इन्द्र की अपेक्षा अग्नि आदि अन्य देवता प्रत्यङ्ग बनते हैं । अग्नि इन्द्र सूर्य ये तीन देवता मूल वा प्रधान हैं जातवेदा द्रविणोदा, वायु, यम, भग, पूषा इत्यादि देवता इन्हीं के अंग हैं तथा शकुनि अश्वादि प्रत्यङ्ग देवता हैं । अङ्गो से अङ्ग तथा अङ्गों से प्रत्यङ्ग भिन्न नहीं होते किन्तु जल तरङ्गवत् अङ्गो में ही विकार उठते हैं वे ही अङ्ग प्रत्यङ्ग कहाते हैं (अपि च सत्वानां प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः) और यह भी है कि घोड़े आदि सत्वों के मूल कारण के महत्त्व को लेकर ऋषि लोग वेद मन्त्रों द्वारा घोड़े आदि की स्तुति करते हैं ऐसा विद्वान् आचार्य कहते हैं । सत्ता रूप महत्तत्व जिस का नाम हिरण्यगर्भ भी है वही सब देवताओं का प्रकृति है

जिस का विशेष व्याख्यान निरु० अ० १४ खं० ३ में देखो। अर्थात् मूल कारण से जो अनेक प्रकार के विपरिणाम स्थावर जङ्गम रूपसे होते हैं उन सब का मूल कारण के साथ अभेद देखते हुए कार्य कारण का अभेद होने से कारण की महिमाओं को लेकर उन घोड़े आदि की स्तुति आत्मज्ञानी ऋषि लोग करते हैं। यही वेद का मुख्य गूढ़ाशय है। जैसे यजुर्वेद अ० ११ मन्त्र २० का अश्व देवता ब्राह्मण सूत्रस्थ विनियोगानुसार है अर्थात् उक्त मन्त्र में अश्व की स्तुति की गई है कि——

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षᳫं समुद्रो योनिः। इत्यादि॥

अध्वर्यु ऋत्विज् घोड़ेकी पीठपर स्पर्श न करता हुआ दाहिना हाथ पीठसे ऊपर धारण किये मन्त्र पढ़ता हुआ स्तुति करताहै कि हे अश्व! तुम्हारी पीठ स्वर्गलोक तुम्हारे पग पृथिवी तथा तुम्हारा उदर अन्तरिक्ष है समुद्र तुम्हारा कारण है। यहां सबके प्रकृति विराट्के महत्त्व को लेकर घोड़े की स्तुति की गई है किन्तु कारण से भिन्न मानकर स्तुति नहीं है। तथा एक आत्मा ही सब स्थावर जङ्गम चराचर रूप बना हुआ है ऐसा मानकर अश्वमेधयज्ञ में (मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा) वृक्ष के मूल शाखा रूप देवताओं के नाम से आहुति देना लिखा है। इत्यादि सब स्थलों में विकार वा प्रत्यंग नामों द्वारा मूल प्रकृति प्रधान देवता रूप एक आत्मा का ही यजन पूजन किया जाता है किन्तु शाखा आदि अपने कार्यरूप से जो देवता नहीं ठहरते उनके नामसे यज्ञ नहीं किया जाता। यह भी वेदका मूल गूढ़ाशय है। तथा (प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्च) प्रकृति मूल कारण ही सर्व नाम रूप बन गया है और वेदमें अश्वादि सब नाम भी प्रकृतिके ही मानकर कार्यवाची शब्दोंसे कारण की प्रशंसा की जाती है। अर्थात् लोक वेद में यह भी एक बड़ा भेद है कि लोक में अश्वादि कार्य्य वाचक कार्य गुण परक लगाये वा समझे जाते हैं और वेद में कार्य

शब्द भी कारण गुण परक लगाये वा समझे जाते हैं। इससे तुच्छ पदार्थों की स्तुति प्रार्थना वेदमें है इस तुच्छ विचार को वेदमें पाठक लोग न रक्खें। इस से यह आया कि देवताओं के स्थान में साधारण अश्वादि की स्तुति वेद में नहीं किन्तु अश्वादि नामोंसे उन्हीं मुख्य देवताओंकी स्तुति की गई है जिनमें स्वाभाविक अष्ट सिद्धियां विद्यमान हैं। सबके प्रकृति हिरण्यगर्भ देवताओं के ही अश्वादि सब नाम होने से देवता (इतरेतरजन्मानः) परस्पर उत्पादक हो सकते हैं। जैसे (अग्नेरापः) अग्निसे जल हुआ तथा (अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रम्) जल से अग्नि उत्पन्न हुआ। अर्थात् लोक व्यवहार यह है कि पिता से पुत्र उत्पन्न होता है पर पुत्र से पिता नहीं होता। परन्तु वैदिक प्रणाली इस से विरुद्ध है " अग्नेर्वाआदित्यो जायते। ऐ० ब्रा० ८। ५। ५" अग्नि से ही सूर्य उत्पन्न होता है। " आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति। ऐ० ब्रा० ८। ५। ५" सूर्य्य अस्त होते समय अग्नि में प्रवेश करता है अर्थात् सायंकाल में सूर्यसे अग्नि उत्पन्न होता है। इससे देवता (इतरेतरप्रकृतयोभवन्ति) एक दूसरे की प्रकृति नाम उपादान कारण भी होते हैं॥

(कर्मजन्मानः) संसारस्थ प्राणियों को कर्म फल भुगाने वाले देवता ही हैं (आत्मजन्मानः) जो एक आत्मा अनेक देवता वाचक नाम रूपों से स्तुति किया जाता तो प्रलय में सत्ता मात्र रूप वाला होता और सृष्टिके सोलह प्रकार में विभक्त होके सब जगत् का धारण पोषण करता है उसी आत्मासे सब देवता प्रकट होते और देवतामय यह सब संसार है (आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माऽश्वः) इन देवताओं का आत्मा ही रथ है आत्मा ही घोड़ा है इस कारण रथ घोडादि नामोंसे आत्मा की ही स्तुति जानो। (आत्माऽऽयुधमात्मेषवः) आत्माही इनका आयुध और आत्मा ही बाण है इस से आयुधादि की स्तुति भी आत्म स्तुति जानो (आत्मासर्वं देवस्य देवस्य) और देवताका अन्यभी जो कोई साधन स्तुति किया गया वह सभी आत्मरूप हैं।

निरुक्त के इसी अ० ७ से खं० ६। ७ में—

अथाकारचिन्तनं देवतानां पुरुषविधाःस्युरित्येकम् । अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम् । अपिवोभयविधाः स्युः।

अर्थ—अब देवताओंका आकार बनावट वा स्वरूप क्या है इसका चिन्तन करते हैं। इसमें एक मत यह है कि देवता मनुष्य के तुल्य स्वरूप वाले हैं। यास्कने इसके बहुत उदाहरण दिये हैं कि "हे इन्द्र तुम्हारी दो भुजा हैं उनसे तुम ग्रहण करो। दो घोड़ों वाले रथ पर चढ़ के आओ। तुम्हारी पत्नी कल्याणी है तुम्हारे घर में सुवर्ण है, हे इन्द्र तुम खाओ पिओ और हमारी स्तुतिको सुनो" इत्यादि सब मनुष्यों काला सामान है। अथवा मनुष्य के तुल्य देवता नहीं यह द्वितीय मत है। इसमें पुरुष के तुल्य हाथ आदि का समाधान भी कर दिया है अर्थात् अन्य ही प्रकार के विलक्षण आकार वाले देवता हैं। अथवा मनुष्यके तुल्य और उससे भिन्न दोनों ही प्रकारके देवता हैं यह तीसरा मत है। कर्म ही रूप देवता हैं यह पूर्व मीमांसाका चौथा मत है। सब का अन्तिम सिद्धान्त यह है कि देवता अचिन्त्य शक्ति वा आश्चर्य शक्ति वाले होने से सब प्रकारों से कहे जा सकते हैं। जितने मत कहे गये वा कहे जांय वे सभी उनमें संघटित हो जाते हैं। अब इस लेख से हमारा प्रयोजन यह है कि जैसे देवता अष्ट सिद्धि वाले यथेच्छ रूपधारी यथेच्छाचारी हैं वैसे देवान्तर्गत पितर भी वैसे ही जानो। हमने यहांतक पितरों के स्वरूप को दिखाने के लिये लिखा इससे हम यह नहीं मानते वा कहते कि हमारे सभी पाठकों का संतोष ठीक २ हो ही जायगा। क्योंकि [भिन्नरुचिर्हिलोकः] लोग भिन्न २ रुचि वाले होते हैं परन्तु इतना अवश्य सिद्ध हो गया कि श्राद्ध में जीवित मनुष्य पितर नहीं। दिव्य पितर मनुष्यों से भिन्न हैं। उनका लोक भी पृथक् है वे नाना रूप धारी स्वभाव से सिद्ध हैं। इससे स्थूल देहधारी जीवित मनुष्यों को पितर मानना सर्वथा युक्ति प्रमाण शून्य है॥

अब द्वितीय प्रश्न यह है कि श्राद्ध मृत पितरों का ही होना चाहिये वा जीवितों का भी हो सकता है ?।

उत्तर–श्राद्ध जिस कर्म का नाम है वह तो मृत पितरों का ही होता आया और हो सकता है। जीवित माता पितादि की सेवा धर्म शास्त्रों में लिखे अनुसार करनी चाहिये। वह पितृसेवा गुरु सेवा श्राद्ध से भिन्न ही एक धर्म सम्बन्धी कर्म है। जो लोग जीवितों के श्राद्धका झूठा ही पक्ष लेते हैं वे किसी ऐसे आधुनिक ग्रन्थ में भी लिखा दिखला दें जो पुस्तक आर्य्यसमाजियों का बनाया न हो तो उनके कथन की कुछ तो जड़ हो सो जब इतना भी नहीं दिखला सकते इससे इनका कथन सर्वथा ही निर्मूल है। तो भी हमारे लेख को पाठक लोग व्यर्थ न समझें क्योंकि इस लोगों में धर्माभास को धर्म समझ के सच्चे धर्म के जिज्ञासु ब्राह्मणादि लोग भी अनेक फँस गये हैं उनका भ्रम दूर होने से वे श्राद्धादि के मानने वाले बनेंगे यह हमारे लेख का फल होगा। तथा कुतर्कियों को उत्तर देने के लिये बहुत मसाला हमारे लेख में आस्तिक लोगों को मिलेगा जिससे वैदिक धर्मकी रक्षा होगी इत्यादि अनेक उपकार होंगे जीवितोंके श्राद्ध की आज तक इस व० आ० स० में भी कोई पद्धति नहीं बनी न कहीं जीवितों का श्राद्ध होता है। तथा श्राद्ध की जितनी पद्धतियां जिन मन्त्रों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा श्रौत गृह्य सूत्रों से अद्यावधि बनी हैं उन सभी ग्रन्थों तथा पद्धतियों में मरे हुए पितादिका श्राद्ध सिद्ध है इस कारण जीवितों का श्राद्ध कहना निर्मूल हठ मात्र है।

अब हम मंत्र संहितादि के प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करेंगे कि श्राद्ध जीवितों का नहीं किन्तु मृतकों का होता है।

अथर्व का० १८। अनु० २ मन्त्र ४८।

उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीतिमध्यमा।
तृतीयाहप्रद्यौरिति यस्यांपितरआसते॥

ब्रह्माण्ड के तीन लोकों में बीच का अन्तरिक्ष वा भुवर् लोक कहाता है इस मध्य लोक के मन्त्र में *तीन भाग* किये (उदन्वती द्यौरवमा) सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैलता है इससे अन्तरिक्ष द्यौ कहाता है उस में पृथिवी की ओर का भाग जल जाता है अर्थात् अन्तरिक्ष में जो नीलापन छाया हुआ दीखता

है यह सूक्ष्म जल है इस जल वाले अन्तरिक्ष भाग का नाम उदन्वती द्यौ है (पीलुमतीति मध्यमा) और जल से ऊपर अन्तरिक्ष का मध्यम भाग पीलुमती द्यौ कहाता है। और (तृतीया ह प्रद्यौरिति) सब से ऊपरी अन्तरिक्षका तीसरा भाग सूर्यादिके प्रखर प्रकाशवाला होनेसे प्रद्यौः कहाता है (यस्यां पितर आसते) इसी प्रद्यौ नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भागमें पितर लोग रहते हैं। पाठक लोगो! इन्हीं पितरों का श्राद्ध होता है। मंत्रमें कहे तीसरे आकाशमें रहने वाले स्थूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते। स्थूल देहधारी पितर पृथिवी में रह सकते हैं तृतीयाकाशमें नहीं। इससे जीवितोंका पितर होना और उनका श्राद्ध मानना दोनों अंश खण्डित हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतकोंका ही श्राद्ध सिद्ध करें किन्तु हमारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थूल देहधारी अपने विद्यमान माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध नहीं है। जीवित और मृत शब्दोंमें कई कुतर्क हो सकते हैं जो मृत हैं वे भी जीवित और जो जीवित हैं वे भी मृत हैं। क्योंकि जो मरे हैं वे कहीं न कहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पितरोंकी भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन सकता है। और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं। मृत शब्दकी भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शव है। इसलिये शव नाम मुर्दा शरीर का श्राद्ध करना शास्त्र का सिद्धान्त नहीं, मुर्दों का श्राद्ध कहना उन लोगों का प्रलाप मात्र है। आत्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इसी लिये (अधा मृताः पितृषु संभवन्तु। अथर्व० १८। ४ ४८) और मरे हुए प्राणी (भूतात्मा) पितृ योनिमें उत्पन्न हों। इस अथर्ववेद के प्रमाण से सिद्ध है कि मृत नाम मुर्देका नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभाशुभ जन्म मरण भूतात्मा के होते हैं यह अश मैत्रेय उपनिषद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छे प्रकार वर्णन किया है। यदि मृत शब्दका भाषानुवाद कोई लोग मुर्दा करते हैं तो यह उन-

की समझ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इसके लिखने से हमारा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतर्की हमको पकड़े कि जो लोग पितादि मरगये उन्होंने किसी योनिमें जन्म ले लिया तो वे जीवित हुए उन्हींका श्राद्ध तुम करते मानते हो इसलिये जीवितों का ही श्राद्ध तुमने भी मानलिया। इस कुतर्कको पहिले से ही निर्मूल काट देने के लिये हम अपने साध्य पक्षस्थ प्रतिज्ञा का स्पष्ट व्याख्यान करदेते हैं कि हम उन पितादि का श्राद्ध शास्त्रानुकूल मानते और करते हैं कि जिस भौतिक शरीरसे वे हमारे पितादि कहाते थे उस शरीर को छोड़कर जो अन्य किसी योनिमें परिणत होगये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है। और श्राद्धके प्रतिपक्षी लोगोंका कथन यह है कि जिस भौतिक शरीर से, वे लोग हमारे पितादि कहाते हैं उसी शरीरका आदर सत्कार करना श्राद्ध है। अर्थात् चाहे यों कहो कि वात पित्त कफादि स्थूल धातुमय भौतिक शरीर को आत्मा मानकर वा चेतन मानकर ये लोग श्राद्ध मानते हैं इस लिये द० आ० स० का श्राद्ध ही मुर्दों का श्राद्ध है (जो चार्वाक मतसे मिलता है) और हमलोग सूक्ष्म भूतात्मा चेतन मात्रका श्राद्ध मानते करते हैं। चाहें यों कहो कि हम लोग परोक्षवाद रूप आस्तिक सिद्धान्त को ठीकर मानते हैं और ये लोग प्रत्यक्षवाद सिद्धान्त को मानते हैं जिसको चार्वाक ने भी ठीक माना है। आगे पाठक लोग ध्यान रक्खें कि हमारा पक्ष यह होगा कि विद्यमान माता पितादिकी सेवा का नाम श्राद्ध नहीं किन्तु जो पितादि स्थूल देह छोड़के किसी योनि में प्राप्त हुये हों उनके लिये शतपथादिके लिखे अनुसार पिण्ड दानादि क्रिया करना श्राद्ध कहाता है। और विद्यमान पितादि की सेवाका नाम श्राद्ध मानना यही जीवित श्राद्ध है इसको शास्त्रप्रमाणों से विरुद्ध ठहराना हमारा पक्ष है। इसके लिये संहितादिके और भी प्रमाण लिखते हैं मन्त्रसंहिता शु० यजु० अ० १९। ६०में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त दो प्रकार के पितर लिखे हैं।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते ॥ यजु० १९ । ६० ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ॥ ऋ० मण्डल० १० । सू०१५ । मं० १४ तथा अथर्व० १८ । २ । ३५ ।

ऊपर लिखे पतों पर उक्त मन्त्र वेद की तीन संहिताओं में हैं। यजुः संहिता में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद ऋग्वेद अथर्ववेद में लाये गये हैं। और (मध्ये दिवः०) इत्यादि पाठ तीनों वेद में एकसा ही है इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद तथा अथर्वमें जिनको अग्निदग्ध अनग्निदग्ध कहा है उन्हींको यजु०में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त कहा है। क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्व में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त शब्द उन मन्त्रों में नहीं आये तथा अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद यजु० में नहीं आये इससे सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध का तथा अनग्निष्वात्त और अनग्निदग्ध का एक ही अर्थ है। पाणिनीय व्याकरणके अनुसार इन शब्दोंका अर्थ यह है कि "अग्निना स्वादिताः अग्निष्वात्ताः। अग्निनादग्धा अग्निदग्धाः।" जलाते हुये आवसथ्यादि अग्निने जिनका स्वाद लेलिया वा अग्नि ने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्त वा अग्निदग्ध कहाते हैं इसी प्रकार तृतीया समासमें वेदोंमें लिखा अन्तोदात्तस्वर (थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् । पा०६।२।१४४ सू०) से सिद्ध होजाता है। सूत्रार्थ यह है कि-गति, कारक, उपपद से परे थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, क प्रत्ययान्त उत्तर पद अन्तोदात्त हों, इस से अधिकरण कारक से परे ष्वात्त और दग्ध इन क्तप्रत्यान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त स्वर हुआ है। यद्यपि ऐसी दशामें जब कि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के परस्पर मेलसे अग्निष्वात्त पदका अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्निसे जलाये गये वेही पितर अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-

पेक्षा नहीं तथापि (अधिकस्याधिकं फलम्) के अनुसार (यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः । काण्ड २) इस शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से भी सिद्ध होगया कि मरने पश्चात् जो आवसथ्य अग्निसे जलाये गये वेही मृत पितर पितृयज्ञ वा श्राद्ध में लिये जाते हैं। मरने पर ही मनुष्यके शरीर अग्निसे जलाये जाते हैं तथा जो जलाये गये वे जीवित नहीं रह सकते इससे श्राद्धमें मृत पितरों का ही ग्रहण मन्त्रसंहिता के प्रमाणों से सिद्ध होचुका।

सुना है कि जड़ कटनेसे घबराये हुए व० आ० समाजियों को यथा कथञ्चित् ढाढस बंधानेके लिये शतपथ के प्रमाणका समाधान कोई लोग यह करते हैं कि यहां शतपथ के द्वितीय कांड में यजुःसंहिता के १६ अ० के अग्निष्वात्त पद वाले मन्त्रों की व्याख्या नहीं है यजु के १६ वें अ० के मन्त्रोंकी व्याख्या १२ काण्डमें है इत्यादि कथन (मुखमस्तीति वक्तव्यम्) के अनुसार है कि मुख हमारा है लेखनी मसी पात्र कागज पासही में है कुछ लिखना कहना भी पड़ता ही है यह न लिखें तो और लिखें ही क्या! शतपथके द्वितीय काण्ड में १६ वें अध्याय के मन्त्रकी व्याख्या क्यों नहीं होसकती क्या इस में कोई नियामक है?। यदि ऐसा कोई नियम होता कि आगे के सूत्रकी व्याख्या पहिले भाष्यमें न हो सकती तो अष्टाध्यायी व्याकरण के प्रत्याहार सूत्रों के महाभाष्य में (शरोऽचि) आदि अष्टमाध्याय के सूत्रों की व्याख्या क्यों की गयी?। इस से वह विचार सर्वथा निर्मूल कट गया कि द्वितीय काण्ड शतपथ में १६ वें अ० के मन्त्रों की व्याख्या नहीं है। यदि यही बात है तो आगरे के शास्त्रार्थ में शतपथ के अनुसार अग्निष्वात्त पद का अर्थ क्यों मान लिया था?। भला यह तो बताओ कि शतपथ के १२ वें काण्डमें किस पते पर अग्निष्वात्त पदका क्या अर्थ लिखा है? यदि पाठकों में से कोई इन से शतपथ के १२ वें काण्ड का पता मांगे तो कदापि नहीं बता सकते क्योंकि शतपथ १२ काण्ड में अग्निष्वात्त पदवाले किसी मन्त्रकी व्याख्या है ही नहीं, शतपथ ब्रा० के द्वितीयका

काण्डमें ऋग्वेदके मन्त्रोंकी व्याख्याभी नहीं, शतपथके प्रकरणादिका हाल इन द० आ० स० में कोई नहीं जानता इसीकारण जिसके मन में जो आता है वह वही लिख मारता है। प्रयोजन यह कि स्वा० द० जीका किया अग्निष्वात्त शब्द का अर्थ शतपथ संहितासे तथा पाणिनीय व्याकरण से विरुद्ध वा अशुद्ध अवश्य है जिसका समाधान इन लोगों में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आदि संहिता के मन्त्रों से मरे हुए पितरों का श्राद्ध वा पूजन होना अवश्य सिद्ध है जिस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं। मनुष्य के मरने पर दो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो मरे हुए मुर्दों को आवसथ्यादि अग्नि से जला देना द्वितीय जिन का अग्निदाह विहित न होनेसे वा किसी खास कारणसे दाह न हो सके उन सब को जल वा वन में फेंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अनग्निष्वात्त वा अनग्निदग्ध कहाते हैं। अनग्निदग्ध वा अनग्निष्वात्त का यह अर्थ होगा कि जो २ अग्नि से नहीं जलाए गए उनके विषय में वेद का यह मन्त्र प्रमाण है कि अथर्व० काण्ड १८।२।३४॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे॥

मरने पर जिनको खोद के गाढ़ दिया जो वन वा जंगल में छोड़ दिये गये जो अग्नि में जला दिये गये तथा जो युधिष्ठिरादि के तुल्य इसी शरीर से स्वर्ग को चले गये, हे अग्निदेव! उन सब पितरों को हविष् खाने के लिये इस श्राद्धादि पितृकर्म में बुलाओ। इस मन्त्र के निर्विकल्प सीधे २ अक्षरार्थ से स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने के पश्चात् ही पृथिवी में गाढ़ देना आदि हो सकता है इस से श्राद्ध में मृत पितरोंका आवाहन करना सिद्ध है। वर्त्तमान पार्वणादि श्राद्धोंमें–

आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। यजु० अ० १९। ५८।

अग्निमें जिनका दाह कर्म होचुका है ऐसे सोमगुणों वाले हमारे पितर देवयान नाम अन्तरिक्ष मार्ग से श्राद्ध में आवें। इस मन्त्रके अर्थ से भी मरे हुए पितरों का श्राद्ध सिद्ध है। शतपथ ब्रा० २ । ३ ४ । २१ (तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरइवैतद्भवति) पितर लोग मनुष्यों से अदृश्य होते हैं और पितरों का भोजन भी अदृश्य सूक्ष्म होता है इस कथन से भी सिद्ध है कि स्थूल देहधारी पितर होते तो अदृश्य नहीं कहे जाते इस लिए पिण्डदानके सम्बन्ध में अदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण शरीर वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य पितर लेने चाहिये इस से भी जीवितों का खण्डन तथा मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध है। तथा शतप० २ । ३ । ४ । २ । ३ में पितरों के लिए प्रत्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये प्रतिदिन सायं प्रातः काल दो बार भोजन प्रजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे मनुष्य ही हुए तब बताओ कि वे ऐसे कौन मनुष्य हैं जो महीने भर में एक बार अमावस्या के दिनही भोजन करते हों। ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने से मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनिमें गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं जिनको महीने भर में एक बार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं होता इस से भी मृतों का श्राद्ध सिद्ध है। शाङ्खायन श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण अ० ४ कं० ४ सू० ७ [न जीवपितुरस्ति] जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डपितृयज्ञ न करे उसके लिये पिण्डपितृयज्ञ नहीं है इस प्रमाण से भी जीवितका निषेध करने से मरे पितरोंका श्राद्ध अर्थापत्ति से सिद्ध है जिसका पिता जीवित हो वह श्राद्ध न करे तो यह आया कि जिस का पिता मर गया हो वह पिण्डपितृयज्ञ करे। तथा शाङ्खायन श्रौतसूत्र साकमेध पर्वस्थ महापितृयज्ञ प्रकरण अ०३ कं०१६ सू० २ [पितृभ्यो वा सोमवद्भ्यः पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः] सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त इन तीन नाम वाले पितरोंके लिये महापितृयज्ञमें भाग वा पिण्ड दिये जाते हैं। इन में अग्निष्वात्त पितर वेही हैं जो मरणानन्तर अग्निदाहको प्राप्त हुए।

इससे भी मृत पितरों के लिये श्राद्ध होना सिद्ध है। तथा पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण कात्यायन श्रौत सूत्र अ० ४ कं० १ सू० २३ (प्रेतेभ्यो ददाति) प्रेत नाम मरेहुए पिता पितामहादि के लिये पिण्ड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्ति से आया कि जीवितों के लिये नहीं। इससे भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान देना सिद्ध है। तथा आपस्तम्ब श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण [यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्] यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डदान न करे तो होम पर्यन्त ही पिण्डपितृयज्ञ करके ठहर जावे। इस से भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान सिद्ध है। तथा मानवकल्प सूत्र में लिखा है कि [यदि दद्याद्येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्] जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिण्ड देवे तो जिन पितामहादि मरोंके नामसे पितापिण्ड देवे उन्हींके लिये पुत्रभी पिण्डदान करे अर्थात् अपने जीवित पिताके नामसे पिण्डदान न करे। इससे भी मरे हुए पितादि के लिये पिण्डदान सिद्ध है॥

यजुर्वेदीय कठशाखा के काठक श्रौत सूत्र में लिखा है कि—

पितापुत्रौ चेदाहिताग्नी स्यातां येभ्यः पिता तेभ्यः पुत्रो दद्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पितामहो जीवेत्पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादिति॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रौत स्मार्त्त अग्नियोंका स्थापन किया हो तो प्रत्येक अमावास्याके दिन दोनोंको पिण्ड पितृयज्ञ करना चाहिये इस दशा में जिन तीनके नाम से पिता पिण्डदान करे उन्हीं के लिये पुत्र भी पिण्ड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे। और यदि पिता मर गया हो पितामह जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पिण्डदान देकर जीवित पितामहको छोड़ उससे ऊपर के प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह इन दोनोंके लिये पिण्डदान देवे। यह विषय ऐसा ही ज्योंका त्यों मनु० अ० ३ श्लो० २२० । २२१ में भी लिखा है जिससे सिद्ध है कि मृतपितादिके लिये पिण्डदान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमाणों से तो अच्छे प्रकार सिद्ध है कि श्राद्ध मरे हुए पितादि का होता है जीवितों के सत्कारका श्राद्ध नाम किसी ग्रन्थसे कदापि सिद्ध नहीं हो सकता॥

अब इन प्रमाणों को श्राद्ध के न मानने वाले कहेंगे कि ये प्रमाण प्रक्षिप्त हैं वा वेदविरुद्ध हैं इसलिये हम नहीं मानते। इसका उत्तर हम यह देते हैं कि जैसे वा जिस नियमसे उक्त वेदादिके प्रमाण प्रक्षिप्त वा वेद विरुद्ध तुम लिखते वा कहते हो उसी प्रकार वा उसी नियम से तुम्हारा यह कथन कि "ये प्रमाण प्रक्षिप्त वा वेदविरुद्ध हैं" प्रक्षिप्त वा विक्षिप्त वेदशास्त्रादि सबसे विरुद्ध महा मिथ्या है। इस एक कथन के मिथ्या हो जाने से सब ऋषियों के ग्रन्थ तथा वेद निष्कलङ्क हो जाते हैं। जिस एक के मिथ्या ठहर जानेसे अनेक तपस्वी महर्षियों के लेख तथा वेद सत्य ठहर जाते हैं वह स्वयं मिथ्या अनेक सत्यों को मिथ्या कदापि नहीं ठहरा सकता। यदि किन्हीं विद्याबुद्धिहीन स्वार्थसाधन में तत्पर धर्म कर्म की मर्य्यादासे शून्य मनुष्योंके लिखने और कहने मात्र से बड़े २ वेद तत्वार्थवेत्ता महर्षियों के ग्रन्थ मिथ्या हो सकते हैं तो वैसे ही हमारे कहने वा लिखने मात्र से उन लोगों के ही कथन वा लेख मिथ्या होजायं जिससे आस्तिकताकी भी रक्षा बनी रहे। वेद में यदि ऐसा कहीं लिखा हो कि जीवित पितादिके लिये वा उनके नाम से पिण्ड देने चाहिये और अन्य ग्रन्थोंमें मृतकों के लिये पिण्डदान लिखा हो तो वह वेद विरुद्ध माना जा सकता है। जब कोई प्रतिपक्षी जीवितों के लिये वेद में पिण्डदान दिखा ही नहीं सकता तब ऋषियों के ग्रन्थोंको मिथ्या वा वेद विरुद्ध कहने लिखने का साहस कैसा अधम है यह सोचने वाले स्वयं जानही लेंगे॥

अब यह दिखाना है कि श्राद्ध किसको कहते हैं?।

अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीत इति कातीयश्राद्धसूत्रे।

कातीय श्राद्धसूत्र में लिखा है कि कृष्णपक्ष में श्राद्ध करे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व में न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उस दिन पितरों के लिये पिण्डदान करे।

अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम्॥

कात्यायन श्रौत सू० ४।१।१।

दोपहर के बाद जिस दिन चन्द्रमा न दीखे उस अमावास्या के दिन पिण्ड पितृयज्ञ करे। काम्य श्राद्धों की तिथि भिन्न २ हैं। प्रयो-

जन यह कि विवाह यज्ञोपवीतादि के तुल्य एक खास प्रकार के कर्म का नाम श्राद्ध वा पितृयज्ञ है। इस श्राद्ध में जो २ कृत्य जिस २ प्रकार करना चाहिये और उस श्राद्ध के जितने अवान्तर भेद हैं वे सब श्रुति स्मृति श्रौत गृह्यसूत्र और इतिहास पुराणादि में अति-प्राचीन कालसे विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिनके अनुसार अनादि कालसे पद्धति भी चली आती हैं जिस कृत्यमें आज तक किसी आ-स्तिक को लेशमात्र भी कभी सन्देह नहीं होता कि श्राद्ध किसको कहते हैं? सो अति प्रसिद्ध विषय में सन्देह होता ही क्यों?। पर-न्तु अब अनुमान ३० वर्ष से किन्हीं आसुरी सम्प्रदाय के मनुष्यों ने स्वधर्म मर्मानभिज्ञ होनेसे स्वयं भी धर्म च्युत दुओंको कलिके प्रभाव से अधोगतिमें गिरानेके लिये वा आस्तिक सम्प्रदाय वैदिक धर्मको धक्का देनेके लिये प्रत्यक्ष आंखोंमें धूल झोंकते हुए केवल धींगा धींगी से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवाका नाम श्राद्ध है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रबलयुक्ति इन के पास कोई नहीं, इसी से अब यह कटता भी जाता है॥

पिता पुत्रका सम्बन्ध शरीरके साथ है वा जीवात्माके साथ?॥

इस प्रश्न का उत्तर विशेष रूप से इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगा उसका संक्षेप से अभिप्राय यह है कि पिता पुत्रका मुख्य संबन्ध मन बुद्धि चित्तादि नामक अन्तःकरण के साथ है अन्तःकरण स्वयं जीव स्वरूप है वा यों कहो मानो कि जो सूक्ष्म वा लिङ्ग शरीर लोकान्तर देशान्तर वा जन्मान्तरों में गमनागमन करता है उसके साथ मुख्य सम्बन्ध है उसी के कारण स्थूल शरीर से भी गौण रूप पिता पुत्र सम्बन्ध माना जाता है। इसमें प्रत्यक्ष युक्ति यह है कि किसी कारण पिता पुत्रों में शत्रुता हो जाय दोनों एक दूसरे को शत्रु भावसे देखने लगें और पिता मानले कि यह मेरा पुत्र नहीं वा पुत्र मानले कि यह मेरा पिता नहीं तो चित्तका सम्बन्ध टूटने पर स्थूलशरीरोंसे भी सं-बन्ध नहीं रहता। अथवा पिता वा पुत्रको वा दोनोंको ठीक २ ज्ञान प्राप्त हो जाय तो भी स्थूल शरीरों से पिता पुत्र सम्बन्ध निवृत्त हो सकता है; इस कारण जीव के साथ ही पुत्र वा पिता का सम्बन्ध

मुख्य है इसी से (हृदयादभिजायसे) यह वेद का कथन ठीक घटता है कि पिता के मन से पुत्र का मन बनता है । जब अन्तःकरणावच्छिन्न जीवके साथ पिता पुत्र सम्बन्ध हैं तब वही जीव स्थूल शरीर का ध्वंस हो जाने पर भी लोकान्तर वा जन्मान्तर में जाता है उसी को जन्मान्तरीय अन्य भोगायतन शरीर में श्राद्ध का फल प्राप्त होने में कुछ आपत्ति नहीं है । जीवित पिता को जला देनेमें वा गाढ़ देने में जो दोष शास्त्र रीति वा लोकरीति से माने जाते हैं वे कुछ भी मृत शरीर के दाहादि में नहीं इससे भी जीव के साथ सम्बन्ध वा प्रेम वासना की मुख्यता होना स्पष्ट सिद्ध है ॥

६-ब्राह्मणों का पेट क्या लेटर बक्स है ? जिस में डाला हुआ भोजन पितरों को पहुंचेगा ।

७-जैसे चिट्ठी पहुंचने की रसीद आजाने पर विश्वास हो जाता है वैसे क्या ब्राह्मण लोग पितरों की रसीद श्राद्ध कर्त्ता को मंगा दे सकते हैं ? ॥

इन दो प्रश्नों के उत्तर भी अन्यत्र मिलेंगे पर संक्षेप से यहां भी लिखे देते हैं । वेदादि शास्त्रों का तात्पर्य वा मन्तव्य अनेकांशों में लोकव्यवहार से विलक्षण होने पर भी अधिकांश लोक व्यवहार के अनुकूल है इसीलिये-

अर्थवन्तः शब्दसामान्यात् ॥ निरुक्त अ० १ । पा० ५ । खं० १ ॥

यास्क महर्षि ने कहा है कि लोक के समान होने से वैदिक शब्द भी अर्थ वाले हैं निरर्थक नहीं हैं । लोक में भी यह रीति है कि जिस देशके राजा वा श्रीमान् लोग जिन २ लोगों को श्रेष्ठ माननीय विद्वान् होने से वा धर्मानुष्ठानी तपस्वी परोपकार परायण होने आदि लोकोत्तर गुणों से पूज्य वा सर्वोपरि प्रतिष्ठार्ह माना करते हैं उन की पूजा प्रतिष्ठाको विद्यादि गुणोंका ही आदर करना माना जाता है वैसे धार्मिक तपस्वी परोपकार प्रिय ब्राह्मण विद्वानों के आदर सत्कार को परम कर्त्तव्य मानते हुए उन के आदर सत्कार करने वालों को अपना ही आदर करने वाले मानकर उन पर विशेष

सन्तुष्ट वा प्रसन्न होते हुए उन गुणग्राही आदर करने वालों को राजादि लोग शुभ फल दे २ कर सन्तुष्ट करते हैं। इसी के अनुसार ईश्वर देव पितर सभी विद्यादि शुभ गुणों द्वारा संसार की उन्नति चाहते हुए धार्मिक परोपकारी विद्वान् ब्राह्मणों का आदर सत्कार श्राद्धादि की रीति से करने वालों पर सन्तुष्ट प्रसन्न होकर उन श्राद्धादि कर्त्ताओं को शुभ फल देते हैं और ऐसा करने के लिये ही उन ईश्वर देवादि ने वेदादि शास्त्रों द्वारा श्राद्धादि करने का विधान और आदेश किया है ऐसा मान लेने पर भी धार्मिक विद्वानों के सत्कार से पितरों को प्रसन्नता फल पहुंचना सिद्ध है ॥

और रसीद मिलने का विचार अविश्वास प्रतिपादक है अर्थात् जिस के द्वारा किसी को कुछ दिया जाय उस का विश्वास न होने पर ही रसीद की अपेक्षा हो सकती है यदि भेजने वाले को दृढ़ वा अटल विश्वास हो तो रसीद की अपेक्षा कदापि न होगी। सांप्रतकाल में तो यहां तक अविश्वास फैल गया है कि अपने किसी परम मेलीको स्वयमेव सामने ही कुछ दिया जाय अर्थात् अन्यके द्वारा न भेजा जाय तो भी रसीद लेनेकी चेष्टा की जाती है। और रसीद मिल जाने पर भी उस को ठीक असली रसीद मानकर विश्वास कर लेते हैं यदि विश्वास न किया जाय और रसीद में बनावटी होने की शंका हो जाय तो बताइये कि रसीद मिलने परभी क्या पुष्टि हुई ?। हमारे सनातनधर्म में असत्य नहीं था किन्तु सत्य का अटल प्रचार था इसी से अविश्वास न होने के कारण रसीद की अपेक्षा ही नहीं थी। जिनको अपने धर्म पर विश्वास ही नहीं उनका सन्देह रसीद से भी नहीं मिट सकता ॥

८।६। प्रश्न–जैसे अन्य के लिये कर्म का फल अन्य को नहीं होता, पुत्र चोरी करै तो पिता वा भाई को जेलखाना नहीं होता, तदनुसार यदि पिता कुकर्मी है तो वह अपने किये का फल भोगेगा पुत्रादि उस को श्राद्ध द्वारा सुख पहुंचाने की चेष्टा करें तो व्यर्थ है। यदि पितादि सुकर्मी होके मरा है तो वह जन्मान्तर में अपने ही कर्म से सुखी रह सकता है उस के लिये भी श्राद्ध करना व्यर्थ है। अन्य के किये का फल अन्य को पहुंच भी नहीं सकता इस से भी श्राद्ध व्यर्थ है ॥

नामुत्रहिसहायार्थं पितामाताचतिष्ठतः ।
नपुत्रदारानज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठतिकेवलः ॥ अ० ४ ।

इस मनु जी के कथनानुसार भी जन्मान्तर में स्त्री पुत्रादि सुख फल नहीं पहुंचा सकते इस से भी श्राद्ध व्यर्थ है ॥

उ०-इन प्रश्नों का भी विशेष उत्तर अन्यत्र मिलेगा पर कुछ यहां भी लिखते हैं। अपने किये कर्मका फल उसी कर्त्ताको भोगने पड़ता है अन्य को नहीं यह बात तो हमें भी निर्विवाद अभिमत है परन्तु अन्य लोग कुटुम्बी आदि दुःख पड़ने पर उसको सहायता क्यों दें? वा न देवें यह कहना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी विरुद्ध है अर्थात् प्रश्न करने वाला स्वयमपि ऐसा न मानता न करता है किन्तु जब किसी अपने प्रिय स्त्री पुत्रादि को वा प्रिय मित्र को कोई रोग हो जाता है तब दिन में इधर उधर दौड़ते कष्ट सहते वैद्य डाक्टर को लाते और श्रम से उपार्जित धन का व्यय करके रोग के कष्ट से छुड़ानेका शक्ति भर पूरा उद्योग प्रश्नकर्त्ता भी करते हैं। ऐसे समय यह क्यों नहीं कहते कि हे स्त्री पुत्रादि लोगो! जिस कुपथ्यसे रोगादि हुआ है वह कुपथ्य कर्म तुमने किया था, हम तुम्हारा औषध कराने में कष्ट वा व्यय क्यों सहें? तुमने किया है तुम्हीं भोगो ऐसा न करके इस से विरुद्ध प्रायः सभी करते हैं। द्वितीय-किसी अपराध के कारण किसी अपने प्रेमी पर जब कोई अभियोग आता है तब सभी लोग शक्ति भर परिश्रम और सहस्रों रुपया व्यय करके भी उस अपराधी को निरपराधी सिद्ध करते हैं और यावत् शक्य उस को कारागार से छुड़ा लेते हैं तब क्यों नहीं कहते कि तुम ने जो कर्म किया है उस का फल स्वयं भोगो हम कुछ सहायता नहीं देंगे। तीसरे दीन दुःखी अन्धे पङ्गु आदि की रक्षा वा भरण पोषण करने वाले यह नहीं कहते कि तुम ने किया है सो भोगो हम सहायता नहीं देंगे ॥

(नामुत्रहिसहायार्थं०) इत्यादि मनु जी का प्रमाण विधिवाक्य नहीं किन्तु (धर्मं शनैः संचिनुयात्०) इस विधिवाक्य का अर्थवाद है कि पिता माता स्त्री पुत्र कुटुम्बी इत्यादि सबसे बड़ा धर्म को समझें इनके लिये भी अधर्म न करे। कर्त्तव्य धर्मानुष्ठान के अर्थवाद का यह अभिप्राय कैसे हो गया कि वेदादि शास्त्र प्रतिपादित श्राद्ध मत करो। यह मान लिया कि जन्मान्तरस्थ नरकादि में होने वाले

दूःखों से बचाने के लिये पूर्वजन्म के माता पिता स्त्री पुत्रादि उपस्थित नहीं हो सकते यह ठीक है तो भी यह कैसे आया कि श्राद्ध मत करो। किन्तु यह अभिप्राय क्यों न मान लिया जाय कि मनु जी ने शोचा होगा कि यदि पुत्रादि पानी देवा कोई न हों वा हों भी तो पितादि के मरने बाद शीघ्र ही वे भी प्लेगादि महा रोगोंसे मरजावें, वा न भी मरें तो ईसाई मुसलमानादि विधर्मी हो जावें, वा विधर्मी भी न हों तो समाजी कुतर्क जालमें फंस जाने से श्राद्ध करनेमें श्रद्धाही न रहे वा यह कुछभी न हो तो श्राद्ध ही ठीक २ श्रद्धा और विधि से न करसकें क्योंकि मूर्ख और श्रद्धाहीन मनुष्यों का अधिक भाग होता है। जब भावी पुत्रादि के विद्यमान रहने वा ठीक२ श्राद्ध कर पानेका कोई निश्चित नियम नहीं है तब उनके भरोसे क्या धर्मका त्याग करना वे समझो नहीं है ? और यहभी मानलें कि किसीके पुत्र ठीक २ अच्छा श्राद्ध करने वाले भी हों तो भी जैसे गिरफ़ार हुए मनुष्यके जो अधिक सहायक हों वे छुड़ानेका उद्योगभी करें तो भी एकदम जेलसे नहीं छुड़ा पाते वैसे अपने प्रबल दुष्कर्मों से नरकमें गये पितादिको तत्काल नरकादिसे एकदम नहीं छुड़ा सकते किन्तु श्राद्ध द्वाराभी धीरे २ ही छुडा सकते हैं। किसी रोगीका प्रबल रोग समारोह से औषध करने परभी धीरे २ ही जैसे शान्त होता है वैसे शनैः २ नरकादि दुःख रूप रोगोंसे श्राद्धादि औषधभी बचाता है तो भी दुःख सर्वथा बच नहीं सकते इस लिये श्राद्धादि के भरोसे पर भी मनुष्य को अपने कर्त्तव्य धर्म से विमुख नहीं रहना चाहिये। और यदि पितादि सुकर्मी हैं तो जैसे धनी को अधिक अधिक ऐश्वर्य प्राप्ति से सुख भी वैसा ही बढ़ता है वैसे पुण्यात्मा पितादिको श्राद्धादि का अधिकाधिक पुण्यभार नहीं होता इस लिये श्राद्ध सब दशामें कर्त्तव्य है अपने लियेभी श्राद्धका उत्तम प्रतिफल अवश्य होता है॥

प्रश्न १०–तुम्हारे पितादि का जन्म किस २ देश लोक वा योनि में हुआ यह ज्ञात नहीं कल्पना करो कि कृमि कीट पतंग मक्खी सूकरादि योनियों में जन्म हुआ तो श्राद्धका फल उनको किस प्रकार पहुंचेगा ? ॥

उत्तर—हमारे पास इसके अनुमान और आगम सम्बन्धी सहस्रों प्रमाण विद्यमान हैं कि मरे हुए मनुष्य किन २ योनियों में गये वा जाते हैं। इसमें अनुमान प्रमाण तो यही है कि जिन २ योनियोंमें देशोंमें वा लोकों में उत्पन्न होने वाले प्राणी जन्म से ही अनायास जैसे २ शुभ वा अशुभ भोगों को प्राप्त हुए हैं उन भोगोंसे उनके पहिले कर्म सिद्ध हैं कि ऐसी २ कर्म वासना सञ्चित होने पर ऐसे २ भोग मिलते हैं। स्त्रियोंका रूप बनाके नाटक खेलने वाले वा गोपी बनने वाले रासधारी आदि पुरुष होने पर भी स्त्रीकी भावना करने से जन्मान्तर में अवश्यमेव स्त्री योनियों में जन्म पाते हैं। हम इस बात को मानते हैं कि अंगरेजों का सा आचार विचार खान पान, करने वाले उसी दशा वा पहनाव आदि की नकल करने वाले और उसी दशाको प्रशस्त मानने वाले जो हिन्दु जण्टलमेन मरते हैं वे अंगरेजोंमें जन्म लेते हैं यदि उनमें कोई भारतवर्ष की उन्नति चाहने वाला अंगरेजों में जन्मता है तो वह अङ्गरेज होकर भी भारत की उन्नतिका सहयोगी अवश्य बनता है। हमारा विश्वास है कि कांग्रेसके सभापति श्रीमान् ह्यूम्स साहब पहिलेके हिन्दू थे। यह बात प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है कि जिसके मनमें जिस देश जाति वा रूपादि की प्रबल वासना होती है कि मैं अमुक दशामें प्राप्त हो जाऊं वह अपनी वासना से प्रेरित हुआ वैसा बनने की पूर्ण चेष्टा करता है। अर्थात् मानसी वासना ही मनुष्यों को प्रवृत्तिके मैदानमें घुमा रही है अपनी २ वासनाके अनुसार ही सब प्राणी उस २ विषयकी ओर झपटे हुए जा रहे हैं॥

धर्मशास्त्रों के भी सहस्रों प्रमाण इस विषय में विद्यमान हैं कि ऐसे २ कर्म करने वाले मनुष्य अमुक २ लोकोंमें अमुक २ योनियोंमें जन्म पाते हैं। मनुस्मृति अध्याय १२ के ५३ श्लोक में कहा है कि—

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत॥ १॥

अर्थ—इस जगत्में जिस कर्मके करनेसे यह जीव क्रमशः जिस२ योनि को जन्मान्तर में प्राप्त होता है उस २ को तुम सुनो हम कहते हैं यह महर्षि भृगु ने अन्य ऋषियों से कहा है। ऐसा कहकर ५४से ७२ श्लोक तक में—बार २ निरपराध ब्राह्मणों को मारडालना, वा तंग करना, नीच वर्ण से ऊंच बनने के लिये मिथ्या भाषण करना

राजदरबारमें निर्दोषीको दोषी सिद्ध करके बध दण्ड दिलाना, और गुरु पर मिथ्या दोष लगाना इत्यादि ब्रह्महत्या सम्बन्धी कर्मोंके बार२ करने से सहस्रों वर्ष पर्यंत भयंकर नरकों के दुःख भोगने बाद क्रम से कूकर, सूकर, खर, गर्दभ, ऊंट, बैल, बकरी, भेड़, मृग, पक्षी, चण्डाल और पुक्कस जातियों में जन्मता है। इसी प्रकार के धर्म-शास्त्रों में शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों के जन्मान्तरमें होने वाले फल दिखाये हैं और जो २ मनुष्य संसार में जैसे २ कर्म करता है वे छिपाने पर भी नहीं छिपते किन्तु प्रायः ज्ञात हो ही जाते हैं इसलिये जब उन २ के कर्म ज्ञात हैं और उन कर्मों से होने वाले जन्मान्तर लिखे हैं तब हम जान सकते हैं कि अमुक २ मनुष्य ऐसे कर्म करने वाले थे वे मरणानन्तर कहां २ गये हैं। कृमि कीट पतङ्गादि किसी भी योनि में मृतक पुरुष का जन्म हो उसके लिये श्रद्धा और विधि से किया श्राद्ध उस २ योनिके अनुकूल भोगमें उसे प्राप्त होगा और वैसी योनियों से उद्धार करने वाला होगा अर्थात्—नीच से नीच योनियों में गये वा ऊंच से ऊंच देवादि योनियों में गये सब प्रकार के प्राणियोंकी स्वाभाविक इच्छा है कि हम जिस किसी प्रकार ऐसी उच्चदशा को प्राप्त होसकें कि जिससे अधिक उत्तम दशा और कोई न हो वा न हो सकती हो। तथा ऐसी ही अभिलाषा अपने परम मान्य पिता मातादि के लिये परम आस्तिक श्रद्धालु सुपुत्रादिके मन में स्वभावतः हुआ करती है कि हमारे माता पितादि जिस उपाय के द्वारा उच्च से उच्च सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हो सकें उसी उपाय का अनुष्ठान करना हमारा परम कर्त्तव्य है। ऐसी अभिलाषाके साधक उपाय वेदादि शास्त्रों में अनेक होने पर भी उन्हीं में से एक महान् उपाय पितृयज्ञ अथवा श्राद्ध तर्पणादि है। वा यों कहो कि पूर्वोक्त अभिलाषा ही श्राद्धरूप विचित्र भित्तिकी नींव है इसी नींव पर पर-मेश्वर रूप राज ने श्राद्धरूप भित्ति खड़ी की है क्योंकि—

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित्। मनु० अ० २।

कामनासे रहित कोई क्रिया नहीं है मनुष्यके लिये २ जिस कर्त्तव्य का आदेश शास्त्रों में किया गया है वह २ सभी सामान्य वा विशेष अभिलाषा के उद्देश पर ही निर्भर है। अब पाठक लोग ध्यान दें कि श्राद्धादि में पूज्य पितरों और पूजक पुत्रादि का उद्देश ही सर्वोत्तम दशा प्राप्ति की कामना है तब हमारे मृत पितादि का जन्म किस लोक देश वा योनि में हुआ इस हुज्जत से क्या प्रयोजन है! अर्थात् कुतर्कोंका प्रयोजन यही हो सकता है कि श्रद्धालु मनुष्य ऐसे व्यर्थ कुतर्कों के पेच में पड़ के अपने उद्देश से डिग जांय वा उसे भूल जावें ॥

मृतक श्राद्ध विषयक प्रश्नोत्तर।

पाठक महाशय! इस समय मृतक श्राद्ध विषयक प्रश्नों के दो पुस्तक एक सनातनधर्मी सज्जन के द्वारा खण्डनार्थ भेजे हुए हमारे सामने विद्यमान हैं ये दोनों ही पुस्तक वेदादि शास्त्रों के ज्ञान से सर्वथा शून्य आर्य्यसमाजियों के बनाये हैं उनमें एक का नाम "श्राद्ध विचार" और द्वितीय का नाम "मृतकश्राद्ध विषयक प्रश्न" है पहिले लाहौर के छपे श्राद्ध विचार पुस्तक में ३५ प्रश्न हैं और द्वितीय (बाबूराम शर्मा इटावा द्वारा प्रकाशित) में २८ प्रश्न हैं। इनमें कई प्रश्न दोनों के एक भी मिलजाने संभव हैं उनका उत्तर एक ही साथ दिया जायगा। इनमें इटावा वाला ट्रैक्ट ११ वार छप चुका है जब यह दशम वार सन् १९०४ में छपा था तब इस के टाइटिल पेज में छापा गया था कि "१२ वर्षसे ये प्रश्न बराबर बांटे जा रहे हैं परन्तु अभी तक किसी पौराणिक ने उत्तर नहीं दिया है। परन्तु संवत् १९६८ के छपे ट्रैक्ट में यह इबारत निकाल दी गई है मालूम पड़ता है कि समाजी महाशयने इन प्रश्नोंके उत्तरोंको कहीं छपा हुआ देखा है तभी पूर्वोक्त इबारत एकादश संस्करण से निकाल दी गई है। ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर सनातनधर्म सभाओं में व्याख्यानों द्वारा अनेक वार दिया जा चुका है। पर फिर भी हमारे समाजी भाई

वैदिक धर्म कर्मका नाश करनेके लिये ऐसे २ ट्रैक्टोंका छपाना बन्द नहीं करते जिस तरह ईसाई लोग रामपरीक्षा, कृष्णपरीक्षा आदि वैदिकधर्म की निन्दा से भरे हुए ट्रैक्ट जगह २ बांटते हैं वही रीति अब समाजी भाइयों ने भी ग्रहण की है। सनातनधर्म सभाओं का कर्त्तव्य है कि इन ट्रैक्टों के उत्तर में ऐसे ही छोटे २ ट्रैक्ट जगह २ पर बेचें और बांटे जावें, अन्यथा, वेदशास्त्रानभिज्ञ साधारण जनों का ऐसी शङ्काओं के जाल में पड़कर वैदिक मार्ग से च्युत होजाना सम्भव है। शास्त्रानभिज्ञ मूर्खों के से प्रश्न होने के कारण किसी साक्षर विद्वान् का कर्त्तव्य नहीं था कि ऐसे प्रश्नों पर लेखनी उठाता परन्तु साधारण सनातनधर्मी मनुष्यों को ऐसे प्रश्नों से श्राद्धतर्पण में शंका हो जाना सम्भव देखकर हमने उत्तर देने का विचार स्थिर किया है। लाहौर वाले श्राद्ध विचार पुस्तक की भूमिका के आरम्भ में मनुस्मृति का आधा श्लोक लिखा है कि—

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः॥

इसमें (धर्मो) यह पद संस्कृत विद्या से शून्य होने के कारण अशुद्ध लिखा छपाया है (धर्मं) शुद्ध होना चाहिये, इस आधे श्लोक से लेखक सन्तराम [अशुद्ध] नाम वाले समाजी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि "धर्म परीक्षाके हेतु तर्क से निश्चय करने की परिपाटी आर्य सन्तान ने धर्म प्रतिपादक वेदको छोड़ देने के कारण विस्मृत करदी है जिससे मृतक श्राद्धादि अधर्म को भी धर्म मानने लगे इत्यादि" हमने यह सन्तराम का अभिप्राय लिखा है, उक्त समाजी महाशय यह भी लिखते हैं कि—अगर ३१ प्रश्नों के पढ़ने से एक भी पुरुष श्राद्ध के तत्त्व को समझ जायगा तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा। अर्थात् मेरे लिखने से एक भी मनुष्य श्राद्ध को छोड़ देगा तो मैं प्रश्नों की सार्थकता हो गयी ऐसा मानता हुआ सन्तुष्ट हो जाऊंगा॥

अब पाठक महाशय! इधर ध्यान दीजिये कि (यस्तर्केणा०) इत्यादि ऊपर के लिखे श्लोकका आधा भाग समाजोने जो चुरालिया सो ऐसी चोरी करना बाबा दयानन्द जी ही समाजियों को सिखा

गये थे। स्वामी दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकोंमें [तामने०] इत्यादि श्लोकों के आधे २ भाग चुराकर मनमाने अपने मत को च-लाने के लिये आधे २ श्लोक लिखकर मनमाना अर्थ कर लिया था। पाठक देखिये मनु भगवान् का पूरा श्लोक ऐसा है कि—

आर्षंधर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते सधर्मंवेदनेतरः॥ अ० १२॥

अर्थ—ऋषि दृष्ट होनेसे आर्ष नाम वेद और वेद मूलक धर्मोपदेश रूप धर्म शास्त्र का श्रुति स्मृति से, अविरुद्ध तर्क के द्वारा जो अनु-सन्धान कर सकता है वही धर्म के तत्त्व को जान पाता है। यदि केवल तर्कसे वेदोक्त धर्मका तत्त्व कोई जान सकता तो चार्वाक बौद्ध जैनादि हमारे ही भाई नास्तिक क्यों बन जाते ?। यदि सभी तर्क वेदशास्त्रानुकूल ही होते तो भगवान् मनु जी वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क से अनुसन्धान करने की सम्मति क्यों देते ? अर्थात् वेदशास्त्रके विरोधी तर्क से या केवल तर्क से अनुसन्धान करके कोई भी धर्मके मर्म को नहीं जान सकता इसी बात को जताने के लिये मनु जी ने [वेदशास्त्राविरोधिना] ऐसा कहा है और इसी अभिप्राय से द्वितीयाध्याय के आरम्भ में (तेसर्वार्थेष्वमीमांस्ये०) (योऽवमन्येत ते मूले०) कहा है कि श्रुति स्मृतिके प्रमाणों पर कर्त्तव्य कामोंके लिये शंका न करे किन्तु श्रद्धा विश्वास के साथ सत्य मानकर कर्त्तव्य का पालन करे, जो कोई धर्म के मूल श्रुति स्मृतियों का शास्त्र मर्यादा से विरुद्ध तर्क के द्वारा अपमान करता है वही नास्तिक हो जाता है। इसी अवलम्ब से चलने वाले ब्राह्मणादि आस्तिकों के भाई चार्वाक बौद्धादि नामों से वेदविरोधी नास्तिक बनकर हम लोगों से पृथक् होगये, अब कुछ काल से यही मार्ग हमारे भाई आ० समाजियों ने पकड़ा है। यदि इन आ० समाजियों ने अपने मन्तव्य का संशोधन कुछ न किया और ऐसे ही अन्धाधुन्ध मन-मानी करते गये तो कुछ काल के बाद यह समुदाय भी आस्तिक मण्डलीसे पृथक् होकर नास्तिकोंका एक मत बन जायगा। और स्वा० दयानन्द जी तीर्थङ्कर के तुल्य हो जायंगे॥

हे समाजी ! आप लोग हमारी कठोरताको क्षमा करके सोचिये कि क्यों सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकों का कोई केवल तर्कसे खण्डन करने लगे तो आप सिद्धकर सकोगे ? अर्थात् कदापि नहीं । आपकी मानी हुई सैकड़ों बातें ऐसी अब भी हैं जिनका प्रमाण शून्य तर्क से खण्डन होसकता है इसलिये वेदादि शास्त्रों के शुद्ध वेदानुकूल अर्थका अनर्थ करने की टेव छोड़ दोगे तो आपके लिये अच्छा हुआ होगा ॥

(प्रश्न १)-मरनेके पीछे मनुष्य के आत्माका जन्म कितने दिन वा काल पीछे होता है ? ।

(उत्तर १) हे समाजी ! इस प्रश्नमें जन्म पूछनेसे तुम्हारा क्या मनुष्यादि पांच महाभूतों के शरीर से प्रयोजन है ? क्या तुम इन्हीं प्रत्यक्ष स्थूल शरीरोंको ही जन्म पदवाच्य समझते हो ? तब तो अपने सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकोंके अनुसार तुमको ही बताना चाहिये कि कितने वर्ष मास पक्ष सप्ताह और दिनोंमें मरा हुआ जीव अर्चिरादि क्रम से अन्न के द्वारा मनुष्यादि के वीर्य में आता है । क्या तुमने स्वा० दयानन्द का लेख नहीं देखा है कि मरने पर जीव यम नामक वायु के साथ आकाशको चला जाता है वहां से सूर्य के किरणादि अनेकोंमें घूमता २ वर्षाजल में घूमता २ ओषधि वनस्पति अन्नादि खाने से वीर्यमें आता है और वीर्यसे गर्भाशय में आकर दशमास में शरीर बनकर जन्म लेता है । यदि तुम इस बाबा दयानन्द के लेखको मानते हो तब तुम पर बहुत प्रश्न हो सकते हैं । एक तो यह कि मृत जीव को इतना लम्बा सफर क्यों कराया जाता है? २-सीधा ही किसी योनिमें क्यों नहीं भेज दिया जाता ? । ३-पापी और पुण्यात्मा दोनोंको एकसा ही चक्कर क्यों कराया जाता है ? । ४-सब घास वा अन्न खाने में ही नहीं आता तब जो घास शाक अन्नादि किसी प्राणीके खाये विना ही सड़ गलके नष्ट हो जाते हैं उन के जीव फिर कहां जाते हैं ? । ५-जो २ मनुष्य पशु पक्षी आदि जब जब स्त्री से संयोग करते हैं तब २ गर्भ स्थित नहीं हो जाता तब

व्यर्थ नष्ट हुए वीर्यवाले जीव कहां जाते हैं ?। इत्यादि प्रश्नों का भार समाजी के शिर पर है ॥

अब रहा सनातनधर्म का सिद्धान्त सो भी सुनिये कि मरने प-श्चात् तत्काल ही कर्मानुसार स्वर्गीय नारकीय वा मध्यकोटिस्थ स्थूल सूक्ष्म किसी न किसी योनिका शरीर बना हुआ उस जीवको मिलता है। यदि वह मनुष्यादि स्वर्ग प्राप्ति के योग्य पुण्यात्मा है तो उसी शरीर से निकले पुण्यविशिष्ट परमाणुओं से तत्काल बना अयोनिज सूक्ष्म दिव्य शरीर मिल जाता है उस के सहित स्वर्ग को प्रस्थान करता है। यदि वह जीव नरक में जाने योग्य पापी है तो पाप विशिष्टपरमाणुओं से तत्काल बना शरीर मरते समय दैवी नियम से तय्यार मिलता है उसी से यमराज के दरबार में पेशी होकर नरक का नम्बर और नरक भोग की वर्ष संख्या को चिट मस्तक में लगाकर उसी नरक को दूतों द्वारा रवाना किया जाता है। मनु० अ० १२। १६॥

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्यदुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीय-मन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अर्थ-पापी मनुष्यों के मरते समय पञ्चतन्मात्र रूप सूक्ष्म भूतोंसे नरक सम्बन्धी पीड़ा भोगने योग्य अन्य नया नारकीय शरीर तत्काल उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् नारकीय जीवों के लिये पहिले से यमराज के यहां से वारण्ट कट जाता है उस वारण्ट को लिये यम-दूत तयार ही खड़े होते हैं प्राणी के शरीर से निकलते ही नारकीय शरीर रूप चोला में गिरफ़ार कर लेते हैं। अब रहे तीसरी कोटि के प्राणी मर्त्यलोक में फिर से जन्म लेने वाले उन को प्रथम मरते ही समय प्रेतयोनि के शरीर धारण करने पड़ते हैं उन्हीं के लिये विशेष कर मृतक शुद्धि के दश दिनों में दशगात्रादि और्ध्वदैहिक कर्म करके प्रेतयोनि को पुत्रादि सम्बन्धी लोग छुड़ाते हैं और इन्हीं कर्मों के प्रताप से यमराज उन को पितृयोनि में जन्म देते हैं वे लोग

सपिण्डी करण के दिन पहिले पितरों में सम्मिलित हो जाते हैं तब से उन के लिये पार्वणश्राद्ध भी हो सकता है। आगे २ पुत्रादि कृत श्राद्ध तर्पणादि से वे लोग स्वर्गादि उच्च २ गति पाते २ मुक्त भी हो जाते हैं॥

अथर्ववेद काण्ड १४ में यह मन्त्र है कि—

मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार,

भा०—यमराजका मृत्यु नामक दूत बड़ा बुद्धिमान् है वह यमराज की आज्ञानुसार मृतप्राणीके प्राणों रूप अर्थात् (सूक्ष्मशरीर सहित) जीव को पितृयोनि प्राप्त होने के लिये यमलोक में पहुंचाता है। अब आशा है कि प्रथम प्रश्न का उत्तर पाठक लोग समझ गये होंगे॥

(प्रश्न २) पुनर्जन्म को मानने वाले शास्त्र गीता भागवत आदि कहते हैं कि जिस प्रकार तृणको कीड़ा आगे पांच रखकर उठाता है इसी प्रकार मनुष्यके आत्मा की गति है अगर यह सच्च है तो श्राद्ध की क्या जरूरत है?॥

(उत्तर २) बड़े कष्टकी बात है कि प्रश्नकर्त्ता समाजी को प्रश्न भी ठीक २ नहीं कर आया और सनातनधर्मी महर्षि विद्वान् श्राद्ध करने को किस २ दशा में क्या २ आवश्यकता समझते है यह कुछ भी समाजी अब तक नहीं जानता, तो भी मनमाने प्रश्न करनेको तयार है। अस्तु जो हो द्वितीय प्रश्नका अभिप्राय हमतो यह समझे हैं कि "जब तत्काल मरते ही किसी योनि में प्राणी को जन्म होगया तब उसके लिये श्राद्ध करना व्यर्थ है क्योंकि वह तुम्हारा श्राद्ध लेने को उस योनि वा देशसे तुम्हारे श्राद्धमें आ नहीं सकता" यदि द्वितीय प्रश्न का यही आशय है तो संक्षेप से उसका जवाब यही है कि वेदादि शास्त्रके सिद्धान्तानुसार श्राद्धतर्पणका मुख्य उद्देश यही है कि उस २ योनि से उच्च २ कक्षा के स्वर्गादि लोकों में होते हुए मुक्तिपर्यन्त अपने पितरों को पहुंचाना तथा श्राद्ध कर्त्ता पुत्रादि को धर्म, विद्या, अविच्छिन्न सन्तान, धन समृद्धि और स्वर्गादि प्रतिफल श्राद्ध तर्पणके द्वारा प्राप्त होता है श्राद्धका यह उद्देश बड़े महत्त्वका है।

अब रहा यह कि जब किसी मनुष्यादि योनिमें किसी देशान्तर

में उस मृत का जन्म होगया तो वह जीव उस योनिसे श्राद्धमें कैसे आ सकेगा ? तो हे शास्त्रज्ञान शून्य समाजी ! तुम सुनो, ध्यान दो जरा आंखें खोलो—

वसून्वदन्तिवैपितॄन् रुद्रांश्चैवपितामहान् ।
प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषासनातनी ॥

मनु० अ० ३ । २ । ४ ॥

अर्थ—वसु रुद्र और आदित्य देवता सामान्य विशेष रूपसे तीनों लोक में विद्यमान रहते हैं वे वस्वादि ही पितादिके रूप से श्राद्धों में आते और श्राद्ध के पिण्डदानादि से तृप्त होते हैं यह सनातन श्रुति नाम वेद का प्रमाण है । वस्वादि के स्वीकृत श्राद्धांशका उत्पन्न हुआ अपूर्व परिणाम पुण्य उस २ योनिस्थ पितादि की उच्चगति का हेतु बनता है । अर्थात् किसी योनि में उत्पन्न हुआ प्राणी उस २ योनि से स्वयं पहिले जन्म के पुत्रादिके किये श्राद्ध में नहीं आता और न उसको आनेकी आवश्यकता होती है । इसी लिये श्राद्धमें पितादिको वस्वादिरूप कहकर पिण्डादि दिये जाते हैं ॥

(प्रश्न ३) दूसरे जन्ममें हमारे पितर किस योनिमें हैं और किस स्थान पर हैं इस बात के पते विना श्राद्धका क्या लाभ, और अगर किसी का बाप हाथी बाघ आदि की योनि में हो तो उसकी तृप्ति ब्राह्मणों के खिलाये खीर आदि से कैसे हो सकेगी ? ॥

(उत्तर ३) हे समाजी ! तुम बताओ कि यदि कोई मनुष्य अपने मृतपितादिका पता जानता हो कि अमुक योनि और अमुक लोक में हमारे पितर विद्यमानहैं तब क्या सत्य कहो कि तुम श्राद्धको सार्थक मान लोगे ? । यदि मान लोगे तो जिसका पता पूछना हो हम बतावेंगे परन्तु आप जिस मृतप्राणी का पता चाहते हो उसकी जीवन चर्य्या पूरी २ हमें बतावें और मरणानन्तर उसके पुत्रादि ने विधिपूर्वक और्ध्वदैहिक कर्म कैसे किये वा कहां किये यह भी सब बताना होगा । और पता जानने पर भी यदि आप श्राद्ध का लाभ नहीं मानते तो यह प्रश्नांशही व्यर्थ होगया । सुनिये हम पूरे सनातनधर्मी आस्तिक ब्राह्मणादि के मृतपितरों की योनि और स्थान का आपको भी पता बतायें देते हैं ॥

शब्दप्रमाणका वयं यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणमिति महाभाष्यम् । दक्षिणाप्रवणो वै पितृ-लोकइति श्रुतिः (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति स्व-धामृतैः शान्तिपराःसुतुष्टाः)॥इति सिद्धान्तशिरोमणौ।

उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीतिमध्यमा ।
तृतीयाहप्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते ॥
इत्यथर्ववेदसंहितायाश्चतुर्दशे काण्डे—

भावार्थ–हम लोग शब्द प्रमाण के मानने वाले हैं इससे जो बात शब्द प्रमाण कहता है वही हमारा निर्विकल्प मन्तव्य है। यह व्या-करण महाभाष्य में लिखा है। वैदिकश्रुति में कहा है कि आकाश मण्डल में दक्षिण की ओर झुका हुआ पितरों का लोक है। सिद्धा-न्तशिरोमणि में लिखा है कि स्वधारूप अमृत से सन्तुष्ट शान्तिशील पितर चन्द्रलोकके ऊपरीभाग में निवास करते हैं। अथर्ववेद संहि-ताके चौदहवें काण्ड में लिखा है कि मेघके कारण नीलाकार सूक्ष्म जल से आच्छन्न आकाशमण्डल पृथिवी की ओर का भाग उदन्वती द्यौ कहाता और उससे ऊपर का भाग द्वितीय आकाशमण्डल पीलु-मती द्यौ कहाता और उस से भी ऊपर तीसरा आकाशमण्डल वि-शेष प्रकाशयुक्त होने से प्रद्यौ कहाता है उसी तृतीय प्रद्यौ प्रदेश में पितर लोग निवास करते हैं। पाठकगण! हमने उन सनातनधर्मी महाशयों के मृतपितरों का पता वेदादि के प्रमाणों द्वारा ठीक बता दिया है कि जो मरण के बाद ठीक २ विधि और श्रद्धा से अपने बाप दादों का श्राद्ध तर्पणादि करते हैं उन के पितादि को पितृयोनि और ऊपर लिखा पितृलोक रूप स्वर्ग प्राप्त होता है। इस में (अ-सून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार) पितृयोनि प्राप्त होनेके लिये मृत प्राणी को मृत्यु पितृलोक में पहुंचाता है यह ऊपर प्रथम प्रश्न पर लिखा वेद का प्रमाण ही प्रबल स्वतः प्रमाण है। इससे श्राद्ध करने वाले आस्तिकों के पितर हाथी घोड़ा गधा कुत्ता व्याघ्रादि योनियों में

न आवें इसी लिये वेद में श्राद्ध कहा है । और हाथी आदि यो- नियों में उन्हीं लोगों के पितर जाते हैं कि जो श्राद्धादि वेदोक्त कर्म को नहीं मानते और न करते हैं। हे समाजी! आप हमारे बताये पते से जर्मनी हवाई जहाज में बैठके बेधड़क चले जाइये बताये पते पर पितरोंको खोजलेना आप का काम है। अब आशा है कि ठीक पता देने पर समाजी लोग श्राद्ध को सार्थक मानने लगेंगे॥

पाठक गण? "ब्राह्मणों के खिलाये खीर आदि से अन्य योनि- स्थ पितरोंकी तृप्ति कैसे होगी?" समाजी के इस तृतीय प्रश्नांश के अभिप्राय से पितृयोनिस्थ पितरों की तृप्ति होना तो जानो समाजी मानता है। अब रहा अन्य योनियों में जन्म होना सो यदि किसी के पुत्रादि मरणानन्तर अपने पितादि का दशगात्रादि, और्ध्वदेहिक कर्म वेदशास्त्रादि में लिखे अनुसार ठीक विधान से किसी भी का- रण से न कर पावें वा उस में विशेष त्रुटियां रहें इस से उस जीव का तिर्यगादि निकृष्ट योनियों में जन्म हो जावे तो भी उनको ब्राह्म- णादि के खाये खीर आदि का पुण्य फल अवश्यमेव पहुंचता है। उस का विचार हम पूर्व प्रश्नों के उत्तर में लिख चुके हैं कि तीनों लोकों में विद्यमान वसु रुद्र और आदित्य स्वरूप पितरों को पिण्ड- दान और ब्राह्मण भोजन रूप श्राद्ध का फल प्राप्त होता है और वे वस्वादि दिव्य शक्तियां होने से सर्वरूप होते हैं इसी से पितृ पिता- मह प्रपितामह के रूपों से श्राद्ध के फल को स्वीकार करते हैं और वह श्राद्ध से हुआ अपूर्व फल उन निकृष्ट योनिस्थ पितरों को उन २ के भोजन रूपों में परिणत होकर उन के सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त हो जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि स्थूलान्नके भोजनको वा पिण्डों को पितर नहीं खाते किन्तु उसके सारांश गन्ध मात्रसे तृप्त होते हैं॥

(प्रश्न ४) प्रत्येक देहधारीके भरण पोषण का परमात्मा ने प- हिले ही प्रबन्ध कर रक्खा है। जैसे बालक के जन्म से पूर्व माता के स्तनों में दूधका प्रबन्ध करना, और इसी प्रकार अगर कोई पितृ- योनि है तो उसके खान पान का भी परमेश्वर की तर्फ से प्रबन्ध,

होगा। फिर श्राद्ध करने का क्या लाभ है? और उन को ब्राह्मणों द्वारा अन्न पहुंचने वा तृप्त होने में क्या प्रमाण है? ॥

(उत्तर ४) हे भोले शास्त्रमर्मानभिज्ञ समाजी! सुनो ध्यान दो भगवान् परमात्मा को सबका प्रबन्धक विनाही कर्मों के मानते हो तबतो अन्धेर नगरी का सारा राज्य मानना पड़ेगा विना ही कारण किसी को राज्य के सर्वोत्तम भोग देता और किसी को रंक बनाके महादुःख देता है सो ऐसा क्यों करता है? क्या ईश्वर उन्मत्त है?। यदि कहो कि सबको उन २ के कर्मानुसार भोग पहुंचता है तो महाशय! पुत्रादि कृत श्राद्ध भी एक कर्म है और वह श्राद्ध उसके ही किसी अंशने वा अंशके अंश पौत्र दौहित्रादि ने किया है। इससे यह उसीके कर्मका फल है कि जो फल जन्मान्तर में ईश्वर ने दिया है। अरे भाई! माताके स्तनोंमें पहिलेसे दूध नहीं होजाता किन्तु बालक उत्पन्न होनेके बाद प्रायः तीसरे दिन प्रसूता स्त्रियोंके दूध निकलता है इसीसे पहिले गौ आदि के दूध का फोहा दिया जाता है। और किसी २ के बिलकुल दूध निकलता ही नहीं तब वहां परमेश्वर को दूध पैदा करने की क्या शक्ति नहीं थी? ॥

वेदमें स्पष्ट प्रमाण होने पर भी समाजी के चित्त में नास्तिकता देवी का प्रवेश हो जाने से विश्वास नहीं कि कोई पितृयोनि है वा नहीं? इसी लिये (अगर पितृयोनि कोई है) ऐसा लिखा है। हम पहिले साफ २ वेद मन्त्र लिख चुके हैं कि—

तृतीयाहप्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते।

तीसरे प्रद्यौ नामक आकाश मण्डलमें पितृयोनिस्थ प्राणियों का स्वर्गलोक है उसीमें वे लोग निवास करते हैं उन पितृयोनिस्थ प्राणियोंके लिये भी भगवान् ने कर्मानुसार भोग नियत किया है। यदि हम दुर्जनतोष न्याय से यह भी मानलें कि पितृ आदि किसी भी योनि में जहां कहीं हमारे पितादिक गये हों वहां उनके कर्मानुसार हमारे दिये विना भी उनको कुछ भोग मिलता ही रहेगा तो भी वेद शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पितरों के संतोषार्थ श्राद्ध तर्पण करनेकी

बड़ी आवश्यकता है जैसे किसी राजा वा हाकिम को भूखा बैठा न होने पर भी राजा की कृपादृष्टि चाहने वाले प्रजास्थ लोग राजप्रसन्नतार्थ अनेक प्रकार की भेटें उपस्थित करते हैं। जैसे गुरु वा माता पितादि मान्य पुरुषों के पास भोजन वस्त्रादि का सब सामान उपस्थित होने पर भी पुत्र और शिष्य अपनी कृतज्ञता दिखाते हुए गुरु आदि के संतोषार्थ प्रसादनार्थ प्रिय वा उत्तम पदार्थों को भेंट करते हैं और गुरु आदि भी उन २ शिष्यादि पर प्रसन्न अवश्य होते हैं। तथा शास्त्रों का भी यह अभिप्राय नहीं है कि माता पिता गुरु जब भूखे वा नंगे बैठे हों तभी उनको भोजन वस्त्रादि के समर्पण से पुत्रादि लोग उनकी सेवा शुश्रूषा करें और भोजन वस्त्र मिलते हों तब सेवा शुश्रूषा न की जाय। वैसे ही पितरों को उस २ योनिमें ईश्वरीय न्याय से कर्मानुसार भोग मिलना मान लेने पर भी उनको प्रसन्न करने के लिये और उनके आशीर्वाद से अपना कल्याण होने के लिये पुत्रादिको श्राद्ध कर्त्तव्य है। क्या आर्यसमाजियों का यही सिद्धान्त है कि माता पिता गुरु आदि को भोजन वस्त्रादि किसीभी प्रकार मिल जाता हो तब पुत्र और शिष्यादि उनकी सेवा शुश्रूषा न करें और भूखे व नंगे बैठे हों तभी भोजन वस्त्रादि से सेवा कर दिया करें। हे समाजी! आप अपने घोंटू से न्याय कीजिये कि दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज तथा गुरुकुल कांगड़ी आदि में सब प्रकार के भोग और क्या सहस्रों लाखों रुपया विद्यमान नहीं हैं? जब कि कालिज आदिमें लाखों रुपया पहिलेसे ही जमा हैं तब आप लोग प्रतिवर्षके उत्सवों पर बार२ चन्दा क्यों मांगा करते हैं? आप के यहां जो धनी लोग हैं वे व्यापारादि से और अधिक २ धन प्राप्तिका उद्योग क्यों करते हैं? क्या इन कालिजादि पर यही तर्क आप कभी करते हैं कि तुम्हारे पास तो खर्चके लिये भोग्य धनादि प्राप्त हैं अब और चन्दा करने में क्या लाभ है? यदि इन सब पर आपका तर्क नहीं है और केवल अपने मृत पिता पर ही तर्क है कि तुम जिस योनि में जाओगे वहां कुछ न कुछ भोग मिल ही जयगा.

इससे तुम्हारे लिये श्राद्ध करना व्यर्थ है तो आप यहभी किया करो कि जब आपके जीवित माता पितादि कहीं विदेश में जावें तब यह कह दिया करो कि जो घर से कुछ नहीं लेजाते उनको भी विदेशमें जिस किसी प्रकार भोजनादि मिलही जाता है वैसे तुमको भी मिल जायगा ईश्वर सबको देता है घरसे कुछ मत लेजाओ इत्यादि ।

संसार में देखा जाता है कि धर्म और धनादि का बोझा कोई नहीं मानता इसी लिये धर्मात्माओं को भी सदा अधिक २ धर्म करना आवश्यक रहता है धनी भी अधिक धन के होते भी और धन के उपार्जन में लगे ही रहते हैं वैसे ही ईश्वरीय व्यवस्था से यथासम्भव हमारे पितरोंको कुछ भोग प्राप्त हो सकने पर भी उनको और अच्छे २ उच्च कक्षाके स्वर्गादि भोग प्राप्त कराने के विचार से वेदादि शास्त्रों में उसी परमात्मा ने पितरों के लिये श्राद्ध तर्पणादि नित्य नैमित्तिक पितृयज्ञ करने का आदेश किया है । हा ! शोक है उन मनुष्यों की समझ पर कि जो अपने पास भोगका सामान विद्यमान होते भी अधिक २ भोगों के सञ्चयार्थ दिन रात चिन्तित रहते और श्रम करते हैं और यह नहीं मान लेते कि हमारे पास भोजन वस्त्रादि विद्यमान हैं हम को और आवश्यकता अन्न धनादि की नहीं है और अपने पूज्य मान्य माता पितादि के लिये कहते मानते हैं कि उन को ईश्वर ने कुछ भोग दिया ही होगा उनके लिये श्राद्ध की आवश्यकता नहीं है पाठक ध्यान दें ।

अब रहा यह कि " उन को ब्राह्मणों द्वारा अन्न पहुंचने वा तृप्त होने में क्या प्रमाण है ? " इसका संक्षेप से उत्तर यह है कि सैकड़ों प्रमाण हैं परन्तु जिसे प्रमाण का तत्त्व समझने और मानने की बुद्धि ईश्वर ने दी ही नहीं उसे हार्दचक्षु से दीखता भी नहीं उसके लिये सब प्रमाण व्यर्थ से हैं चाणक्यनीति में लिखा है कि—

यस्यनास्ति स्वयंप्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किङ्करिष्यति ॥

जैसे सैकड़ों दर्पण होने पर भी अन्धे को कोई रूप नहीं दिखा सकता वैसे ही जिस के पास बुद्धि स्वरूप आंखें नहीं हैं उस के

लिये शास्त्रोंके प्रमाण भी व्यर्थ हैं। तथापि हम विचारशील आस्तिक पाठकों के लिये कुछ प्रमाण लिखे देते हैं—

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः स्वधा पितृभ्योदिविषद्भ्यः। यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राःस्वधावतीः॥ अथर्व० कांड १८ अग्निष्वात्ताः पितरएहगच्छत सदःसदः सदतसुप्रणीतयः अत्ताहवींषि० ॥ यजुर्वेद अ०। यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ॥ शतपथ कांड २ तथा मनु० अ० ३—

निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते ॥ १८९ ॥
यावदुष्णंभवत्यन्नं यावदश्नन्तिवाग्यताः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ताहविर्गुणाः ॥ २३७ ॥

यथाभागमश्नीतेत्येवैतदाह। तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरइवैतद्भवति॥ शतप० कां० २। ४।

भा०—पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गलोकमें रहने वाले वसु आदि स्वरूप पितरों को हमारा दिया स्वधा नाम पिण्डादि रूप अन्न प्राप्त हो। वेद के निघण्टुकोष में स्वधा नाम अन्न का है। अन्तरिक्ष और स्वर्ग में रहने वाले वे ही मृत जीव पितर हो सकते हैं कि जिन का तीसरे आकाश मण्डल में निवास लिखा है। श्राद्ध के समय तिल मिले हुये भुने जौ श्राद्ध स्थानमें स्वधा कहने द्वारा बिखेरने चाहिये। शतपथ में लिखा है कि मरने पर जिनके शरीरों को जलाते हुए अग्नि ने चाट लिया नाम स्वाद ले लिया वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं। यजुःसंहिता में कहा है कि हे अग्निष्वात्त पितरो! तुम लोग वस्वादि रूप से इस श्राद्ध कर्म में आओ और पितामह प्रपितामह के नियत किये अपने २ स्थान पर बैठो और आपके लिये तयार किये भोजन

को खाओ। इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अग्नि में जलाये मृत पितरों का श्राद्ध में आना और भोजन करना दोनों सिद्ध हैं। इत्यादि वेद मन्त्रोंका अभिप्राय मनुजी ने यों कहा है कि-श्राद्ध में निमन्त्रण दिये ब्राह्मणों के साथ निमन्त्रण के समय से ही वे पितर लोग प्राणवायु के सूक्ष्म अदृश्यरूप से उपस्थित हो जाते हैं ब्राह्मणों के चलने फिरने में साथ २ चलते फिरते और बैठने पर बैठ जाते हैं। भोजन के समय जब तक पाक गर्म रहता और जब तक ब्राह्मण लोग मौन रहते हुए भोजन करते हैं तभी तक पितर लोग उन के साथ भोजन करते हैं इस लिये कुछ गर्म २ भोजन श्राद्ध में कराना चाहिये और ब्राह्मणों को उचित है कि मौन होकर भोजन करें। शतपथ ब्रा० के प्रमाण से यह भी सिद्ध है कि पितर लोग अपना २ अंश श्राद्ध में सूक्ष्म रूपसे अदृश्य रहते हुए खाते हैं पाठकगण! अब आप देखचुके कि समाजी का मांगा हमने श्रुति स्मृति दोनों मान्य ग्रन्थोंका प्रमाण ब्राह्मणों द्वारा मृतपितरों के तृप्त होने में दिखा दिया। अब यदि समाजी प्रमाण को न मानें तो उन की इच्छा, परन्तु पाठक लोगों को सन्तोष अवश्य होगा।

(प्रश्न ५) महाभारत में श्राद्ध करना शिष्टाचार का काम नहीं तथा श्राद्ध वेदनुकूल नहीं यह स्पष्ट लिखा है। (क) महाराज कर्ण ने सबसे पहिले मृतक श्राद्ध की प्रथा चलाई। परन्तु उस समयके ऋषियों ने उसका निषेध किया। महाभारतका यह इतिहास यदि सत्य है तो सिद्ध हुआ कि महाभारत के पूर्व मृतक श्राद्ध की रीति प्रचलित न थी, और उस समयके लोग आज कलके पुरुषोंसे अधिक संस्कृत विद्याके ज्ञाता वैदिक धर्मके मानने वाले थे और उस समय में अगर मृतक श्राद्ध अधार्मिक वा शिष्टाचार के विरुद्ध था तो अब इसे किसने और किस प्रमाणसे शिष्टसम्मत वा धार्मिक बना दिया? देखो महाभारत अनुशासन पर्व अ० ९१ जहां लिखा है कि निमि ऋषि ने अपने पुत्र के मरने पर पहिले तो शोक मोह में व्याकुल हो उसको पिण्डदान किया और पीछे से इस ऋषि मुनियोंके प्रतिकूल कर्म पर पश्चात्ताप वा सन्ताप किया जैसा कि—

तत्कृत्वातु मुनिश्रेष्ठो धर्मसङ्कटमात्मनः ।
पश्चात्तापेनमहता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥
अकृतंमुनिभिः पूर्वं किंमयेदमनुष्ठितम् ।
कथन्नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥

उस कर्म को करके अपने पर धर्म सङ्कट को अनुभव कर सन्तप्त हुआ २ चिन्तन करने लगा कि जिस कर्म को ऋषि मुनियों ने नहीं किया उसे मैंने क्यों किया ? और अब मुझे ब्राह्मण लोग शाप न दे देवें इत्यादि ।

(उत्तर ५)–पाठकवृन्द ! इस पांचवें प्रश्नका अभिप्राय थोड़ा सा (कि श्राद्ध ठीक है तो महाभारत में निषेध क्यों है ?) है पर येस-मझी से समाजो ने बढ़ा दिया है । हमने पाठकों के अवलोकनार्थ सब पूर्व पक्ष को लिख दिया है । अब हम ऊपर लिखे पूर्वपक्ष का अति संक्षेप से उत्तर लिखते हैं पाठक महाशय ! ध्यान देकर देखिये महाभारत का नाम लेकर समाजीने ऋषि मुनियोंको नास्तिक बनाने की सर्वथा ही मिथ्या चेष्टा की है जिस में एक तिलमात्र वा एक रोम भर अंश भी तो सत्य नहीं है । महाभारत के अनुशासन पर्वस्थ ९१ अध्याय के १६ । १७ । दो श्लोक समाजी ने बीच में से लिख दिये हैं । परन्तु वहां ८७ वें अ० से ९२ अध्याय तक छः अध्यायों के १७२ श्लोकों में विस्तारके साथ श्राद्धका विधान व्यास जी ने वर्णन किया है अ० ८७ में श्राद्ध का काल (कब २ किन २ तिथियों में श्राद्ध करे यह) वर्णित है । अ० ८८ में तिल तण्डुल चावलादि श्राद्ध में पिण्डदानके योग्य अन्न फल मूलादि का विचार है, अ० ८९ में काम्य श्राद्धों का कृत्तिकादि भिन्न भिन्न नक्षत्रों में वर्णन दिखाया है, अ० ९० में अपांक्तेय और पंक्तिपावन अर्थात् सु-पात्र और कुपात्र ब्राह्मणों की परीक्षा का वर्णन किया है । अ० ९१ वे में लिखा है कि महर्षि निमि का श्रीमान् नामक पुत्र एक सहस्र वर्ष घोर तप करके मर गया । उस पर निमिको बड़ा शोक हुआ, निमि ने शोकग्रस्त होने के कारण बुद्धि ठीक न होनेसे ठीक विधि से

श्राद्ध नहीं किया किन्तु बिना परीक्षा किये सात ब्राह्मणों को भोजन कराया और अग्नौकरण किये बिना ही पिण्डदान करदिया अच्छे परीक्षित ज्ञाननिष्ठ वेदवेत्ता एक दो वा तीन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये। मनु जी ने कहा है-अ० ३-१२५।

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे॥

भा०-कोई राजा रईस हो तो भी अधिक से अधिक पांच वा कम से कम दो विद्वान् ज्ञाननिष्ठ सदाचारी ब्राह्मणों को भोजन करावे बड़ी पांति श्राद्धमें न करे सो निमि ने साधारण कोटि के सात ब्राह्मणोंको भोजन कराया सो यह ठीक नहीं था। अ० ९२ के आरम्भ से यह दिखाया है कि अग्नि में दो वा तीन आहुति होम किये बिना और (ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना०) मन्त्र से पिण्ड देने के स्थान से दक्षिणमें अग्निका अङ्गार स्थापित किये बिना जो पिण्डदान किया जाता है तो उस श्राद्ध को असुर राक्षस भ्रष्ट कर देते हैं और पितरों को दुःखदायी होता है सो निमि ने भी अग्नि में होम तथा अङ्गार स्थापन किये बिना ही पिण्डदान किया था।

जब निमि को ज्ञात हुआ कि मेरा श्राद्ध विधि रहित शास्त्रमर्यादासे विरुद्ध हो गया तब निमि को शोक और पश्चात्ताप हुआ:कि किसी विद्वान् ऋषि मुनि ने ऐसा वेदविधि से विरुद्ध श्राद्ध कभी नहीं किया पर मुझ से ऐसा हो गया कहीं ब्राह्मण विद्वान् मुझ को शाप न देदेवें। ऐसे शोकग्रस्त निमिने अपने वंशकर्त्ता आदि ऋषि अत्रि का ध्यान किया, अत्रि ने तत्काल प्रादुर्भूत होकर निमि को अन्य ऋषियों सहित समझा के फिर से विधि पूर्वक अग्निमें होमादि करके पिण्डदानादि श्राद्ध कराया।

अब पाठक! महाभारत का विचार देख चुके कि वहां श्राद्ध के खण्डन की कोई भी बात नहीं है जिस की इच्छा हो महाभारत के उक्त छः अध्यायों में श्राद्ध का विचार देख लेवे ऐसा ही मिलेगा।

क्या समाजी प्रश्नकर्त्ता अपने महामिथ्या धोखा देने वाले प्रश्न का समूल खण्डन देखकर लज्जित नहीं होंगे ?

इटावा के छपे श्राद्ध विषयक प्रश्नों के पुस्तक में दो प्रश्न ये हैं कि " १-पौराणिक दन्तकथानुसार मृतक श्राद्ध को चलाने वाले राजा करण हुए हैं इससे पूर्व श्राद्ध की चाल न होने से वेदोक्त नहीं २ राजा कर्ण से पहिले मृतपितरों की गति होने को क्या २ धर्म कर्म करते थे ? "

(उत्तर १ । २) और इस लाहौर वाले पुस्तक में भी (क्) संकेत से राजा कर्ण का श्राद्ध चलाना ऊपर लिखा है-इन सब का संक्षेप से उत्तर यह है कि यह समाजियों का लेख सर्वथा मिथ्या मनगढ़न्त का है । क्योंकि किसी पुराणादि में इस अंश का प्रमाण यदि महाभारत के तुल्य अन्य अभिप्राय से भी कहीं मिलता तो समाजी अब तक अवश्य लिख मारते इस से ज्ञात होता है कि किसी समाजी को कभी स्वप्न हुआ होगा कि राजा कर्ण ने श्राद्ध चलाया, यदि उसे होश होता कि वाल्मीकीय रामायण का वृत्तान्त त्रेतायुग का है उस समय भी भगवान् रामचन्द्र जी ने अपने मृत पिता दशरथ का श्राद्ध वन में ही किया था । इतिहासों में लाखों वर्ष पहिले श्राद्ध के अनेक उदाहरण हैं संहिता ब्राह्मण वेदाङ्ग श्रौत गृह्यसूत्रादि सैकड़ों आर्षग्रन्थों में श्राद्ध के सहस्रों प्रमाण अनादि काल से विद्यमान होने पर भी राजा कर्ण का चलाया श्राद्ध को लिखना ऊपर को मुख करके आकाश में थूकने के तुल्य है । अस्तु कभी कोई समाजी राजा कर्ण से श्राद्ध चलने का पते सहित प्रमाण देगा तो भी उसका उचित उत्तर दिया जायगा ।

प्रश्न ६-पितर स्वर्गमें गये हैं वा नरक में, यह समझने की जब किसी के पास युक्ति नहीं, और पितर कितने दिन यम के घर रहकर अब किधर गये हैं तथा उनका पूरा पता क्या है? जब यह किसी को मालूम नहीं तब उन को अन्न वस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को डाक द्वारा वस्तु भेजने के तुल्य नहीं ? और ऐसी अवस्था में उनको भेजनेके लिये अन्न वस्त्र ब्राह्मणोंके हवाले करना और फिर

उनकी रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालों ने ही खा लिया हो और ऐसा करना व्यर्थ नहीं क्या ? ॥

उत्तर ६–यह प्रश्न तीसरे प्रश्नके साथ पुनरुक्त होनेसे अधिकांश व्यर्थ है। तीसरे प्रश्न के उत्तर में पितरों का पता हमने बताया है जिस किसी समाजी की इच्छा हो अपने पूर्व मृत पितरों के जीवन काल की ठीक २ सत्य दिनचर्या लिखकर हमारे पास भेजे हम उस को ठीक २ पता बता देंगे वह भले ही निराकार को तार देकर खबर मंगा लेवे वा स्वयं जाकर पता लगावे जब हम पितरों का पूरा २ पता युक्ति प्रमाण सहित दे चुके और देते हैं तब भी न मानना हठ मात्र है। अब रह गया कि "उनकी रसीद का न आना न पहुंचना सन्देह का हेतु है" सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि श्राद्ध का संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टि के आरम्भ से वैवस्वतादि अमुक २ मन्वन्तर चतुर्युगी युग संवत्सर तिथि मुहूर्त्तादि समय में अमुक देश में अमुक वर्ण नाम गोत्रादि वाला मैं पुरुष वा अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मणको अमुक २ माता पितादि के निमित्त अमुक वस्तु वा भोजन वस्त्रादि देता हूं। वहां उस समय बैठे सब मनुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। और देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी विचार से मनुजी ने कहा है अ० ८

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।
तांस्तुदेवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः॥

अर्थ–पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हमको पाप करते कोई नहीं देखता परन्तु यह भूल है क्योंकि उनको देवता लोग और अन्तर्यामी ईश्वर देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं वे ही श्राद्धादि पुण्य कर्म के भी गवाह हो जाते हैं। वह रसीद आकाश मण्डल रूप कागज में वाणी रूप स्याही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है जैसे फोनोग्राफ के छोटेसे आकाश में बोले हुए शब्द भर जाते हैं वैसे ही श्राद्धादि के दान की यह संकल्पात्मक

रसीद महाकाश में भर जाती है इसी लिये पतञ्जलि मुनि ने शब्दों का स्थान आकाश (आकाशदेशः शब्दः) को कहा है। आकाश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी योनि में श्राद्धादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है तब वहीं पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं। और जब श्राद्ध करते ही समय वा कर चुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वत्र कुशलता प्रसन्नता आनन्द मङ्गल दीख पड़े तब यही श्राद्ध फल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश मण्डलस्थ रसीद पर दस्तखत हो आये। और यदि अप्रसन्नता अमङ्गलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सफल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तब यजमान तथा श्राद्धादि भोक्ता ब्राह्मण का शास्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दशा में केवल ब्राह्मण का ही अपराध मान लेना भी इकतर्फी डिगरी कर देना है। अभिप्राय यह है कि रसीद नाम विश्वास हो जाने का है यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देह हो जाय कि अन्य के से हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और फिर पत्र द्वारा पूछने पर भी उसी की ओर से लिख सकता है कि हां मुझे रुपया मिल गये तब विश्वास न हो तो यहां की रसीद भी रद्दी जानो और शब्द प्रमाण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिन का अटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकटवर्ती अथवा परम मित्र के द्वारा कोई वस्तु समाजी मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजे कि जिस का सर्वांश में पूरा पूरा विश्वास हो तो वहां समाजी कदापि रसीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस गुरू वा मित्र का पूरा विश्वास नहीं तब वह गुरू वा मित्र बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है अन्त में जब तक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रद्दी हैं जब विश्वास दृढ़ हो गया तब रसीद की आवश्यकता सनातनधर्मियों को नहीं है।

प्रश्न ७-महाभारत में लिखे अनुसार सिद्ध है कि प्राचीन काल में मृतक श्राद्ध न हुआ करते थे तब पितरों की तृप्ति होती थी या नहीं ? अगर नहीं तो इस में क्या प्रमाण है ? ।

उत्तर ७-पाठक देख चुके हैं कि पहिले इन्हीं पंजाबी सन्तराम महात्मा के महाभारत सम्बन्धी लम्बे पांचवें प्रश्न का कैसा मुंह तोड़ उत्तर दिया जा चुका है, जब महाभारत के प्रश्न में कुछ लेश मात्र भी अंश सत्य नहीं है किन्तु वहां स्पष्ट रूप से मृतकश्राद्धका प्रत्युत विधान लिखा है तब उसी में इस सातवें प्रश्न का भी समूल खण्डन आ गया। वास्तव में उक्त महात्मा ने केवल संख्या बढ़ाने के लिये ही ऐसे प्रश्न बेसमझी से व्यर्थ पुनरुक्त गढ़ लिये हैं, जब मृतक पितृ श्राद्धों का सदा से होते आना सिद्ध है तब उन्हीं श्राद्धों से आस्तिक सनातनधर्मियों के पितृगणों की सदा से तृप्ति होती आना भी सिद्ध है परन्तु नास्तिक वेद विरोधियों के पितरों की सदा दुर्गति होगी, इससे विशेष लिखना व्यर्थ है।

(प्रश्न ८)-श्राद्ध में गैंड़ा सुअर बकरा मच्छी आदि के मांस ब्राह्मणोंको खिलानेसे पितरोंको लम्बे काल तक तृप्ति रहती है ऐसा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में लिखा है क्या यह सच है ? अगर सत्य है तो इसमें क्या प्रमाण है तथा जब यहां ब्राह्मणों के माँस पिण्ड खाने से परलोक में पितरों की दीर्घ काल तक तृप्ति होती है और यहां उस मांस खाने वालों को उस मांस से २४ घण्टे भी तृप्ति नहीं होती क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ?

(उत्तर ८)-अरे ! भाई भोले समाजी ! थोड़ा होश में आओ, क्या तुमको इतनी भी खबर नहीं है कि श्राद्ध में जो पिण्डदान होता है वह ब्राह्मणों को नहीं खिलाया जाता, क्या तुम यही समझ रहे थे कि पिण्ड ब्राह्मणों को खिलाये जाते हैं ? पाठक देखिये प्रश्न करने वाले समाजी की बुद्धि कैसी विपरीत है। जब किसी ग्रन्थ वा पद्धति में भी नहीं लिखा और न कहीं ब्राह्मणों को पिण्ड खिलाने की चाल है तथा न कोई वैसा करना ठीक मानता है तब क्या समाजी अपने ऐसे अज्ञान के लेख पर लज्जित नहीं होगा ? । अस्तु जो हो।

अब रहा यह विचार कि मछली गैंड़ा आदि के मांस के पिण्ड करने से मनुस्मृति आदि में पितरों को अधिक २ तृप्ति क्यों दिखाई है क्या मांस के पिण्ड जीवहिंसा के विना हो सकते हैं ? तब इसका समाधान यह हैं कि हिंसा जन्य होने से सब प्रकार के मांस भक्षण का निषेध है। श्रुति स्मृति पुराणादि सब शास्त्रों का अटल सर्वदेशी मत यह है कि अप्राप्ति में सदा ही विधान वा आज्ञा की जाती है कि इस काम को अमुक समय अवश्य करो जैसे कहा है कि (ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत। प्रातः सन्ध्यामुपासीत) ब्राह्म मुहूर्त नाम चार घड़ी रात्रि शेप रहे उठना चाहिये और प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले सन्ध्योपासन करना चाहिये। इत्यादि विधि वाक्य कहाते हैं प्रातःकाल की निद्रा विशेष प्रिय होने से आलस्य वश होके मनुष्य उस समय उठकर शौच स्नान सन्ध्योपासनादि द्वारा ईश्वर का आराधन स्वयं नहीं करना चाहता है इससे उठना और सन्ध्योपासन करना प्राप्त नहीं है इसी लिये अप्राप्तिमें विधान किया गया, और प्राप्तिमें सदा ही निषेध होता है जिन अनुचित धर्म विरुद्ध कामों को काम क्रोध लोभादिसे ग्रस्त हुए मनुष्य किया करते हैं उन व्यभिचार हिंसादि का निषेध किया जाता है।

प्राप्त का विधान और अप्राप्त का निषेध नहीं देखा जाता, जैसे भोजन करते हुए से ऐसा कथन नहीं बन सकता कि चलो भोजन करलो, सन्ध्या करते हुए से नहीं कहा जाता कि सन्ध्या करनी चाहिये। इसी प्रकार वन्ध्या के पुत्र का विवाह मत करो, आकाश के फूलों की माला मत बनाओ ऐसे निषेध इसीलिये असंगत हैं कि वन्ध्या पुत्र और आकाशपुष्प जब प्राप्त ही नहीं हैं तब उनका निषेध करना भी सर्वथा व्यर्थ है। इसीके अनुसार शोचना चाहिये कि मांस भक्षण प्राप्त है वा अप्राप्त ? ऐसे विमर्श के उपस्थित करने पर मांस, मद्य और मैथुन तीनों ही स्वतः सिद्ध राग प्राप्त हैं जैसे मैथुनके लिये प्रवृत्ति के विधान की आवश्यकता नहीं देखी जाती, विधान की अपेक्षाके विनाही मनुष्य पशु पक्षी आदि सब जीव स्वतएव राग प्राप्त

मैथुन में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं जैसे मैथुनके लिये वेदादिके विधि वाक्यों की अपेक्षा कोई नहीं रखता, वैसे पुष्टि कारक स्वादिष्ट होने से मांस भक्षण भी राग प्राप्त है और निद्रादि के तुल्य बेहोश करने वाले मद्यादि का सेवन भी राग प्राप्त है तब सिद्ध हुआ कि प्राप्ति में विधान हो नहीं सकता फिर मन्वादि महर्षियों ने श्राद्धादि में मांस के पिण्डों का वा मांस के भक्षण का विधान क्यों किया ? ॥

व्याकरण महाभाष्य के बनाने वाले पतंजलिमुनि ने पहिले पस्पशाह्निक में जहां लिखा है कि—

पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या इत्युक्ते गम्यत एतदतोऽन्येऽभक्ष्या इति ।

पांच नख वाले पांच प्राणी भक्ष्य हैं ऐसा कहने पर यह सिद्ध हो जाता है कि इनसे अन्य अभक्ष्य हैं । इसीपर कैयटने कहा है कि

न त्वयं विधिः । अप्राप्तेरभावात् ॥

अर्थात् पांच नख वाले पांच प्राणियोंको भक्ष्य कहना विधि वाक्य नहीं है क्योंकि अप्राप्तिका अभाव होनेसे अर्थात् मांस भक्षण स्वत एव रागप्राप्त है और विधि अप्राप्त में हो सकता है इससे यह विधि नहीं किन्तु इसका नाम परिसंख्या है । वेदादि सब शास्त्रोंमें परिसंख्याका सर्वत्र यही अर्थ होता है कि कथित से विरुद्ध अर्थात् तद्भिन्न से हटाना, किन्तु लक्ष्यमें प्रवृत्त करना परिसंख्या का अर्थ कदापि नहीं होता । यहां पांच नख वाले पांच प्राणी कथित वा लक्ष्य हैं उनके भक्षण में प्रवृत्त करना शास्त्र का अभीष्ट इसी लिये नहीं है कि भक्षण में प्रवृत्ति तो स्वतः सिद्ध रागप्राप्त है उस के लिये शास्त्रकार की चेष्टा निष्फल होती है परन्तु तद्भिन्न से निवृत्ति के लिये जब चेष्टा करने की आवश्यकता है तब वैसा परिसंख्या का अर्थ शास्त्र की निरर्थकता को मिटाके उसे सार्थक बना देता है ।

इस से यह सिद्ध हुआ कि श्रुति स्मृति पुराणोंमें जहां २ मांस भक्षण वा मांस के पिण्डादि करने का विचार पाया जाता है वहां सर्वत्र उस को विधि वाक्य नहीं मानना चाहिये किन्तु वे सब परि-

संख्या वाक्य हैं। इन परिसंख्या वाक्यों का भी स्वार्थ से भिन्न लक्ष्य के प्रतिपादन में तात्पर्य लगाया जाता हो सो नहीं है किन्तु सभी शास्त्रों में ऐसे अपरिसंख्यात विचार देखे जाते हैं कि जिनका स्वार्थ में कुछ अर्थ न लगा कर अन्यार्थ बोधकत्व माना जाता है। जैसे व्याकरण में पर्युदास नामक निषेधका स्वार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ तत् सदृश के ग्रहण में माना जाता है अर्थात् निषेध द्योतक वाक्य से एक प्रकार का विधानार्थ समझ लिया जाता है वैसे यहां भी पांच प्राणियों के भक्षण विधान द्योतक वाक्यसे तद्भिन्न के भक्षण का निषेधार्थ मात्र समझ लेना चाहिये।

तथा जैसे किसी कवि ने कहा है कि "हे चातक पक्षी मेरे मित्र भइया सुन! जल वर्षाने वाले बादल आकाश में बहुत हैं पर सब ऐसे नहीं हैं जो तेरी टेर सुनकर तुझ पर दया करें किन्तु कोई तो ऐसे हैं जो वर्षा करके भूमिस्थ सब प्राणियोंको तृप्त कर देते हैं और कोई वृथा ही गर्ज २ करके कान फोड़े डालते हैं और वैसे ही एक बिन्दु भी वर्षा किये बिना ही भाग जाते हैं, इस से हे चातक मित्र! तू जिस २ को देखता है उस २ के आगे दीनता के वचन मत कहा कर" इस कथनका अभिप्राय भी स्वार्थ में कुछ नहीं है किन्तु भिक्षा मांगने वाले भारतवासी मनुष्यों को कवि ने सचेत करने के लिये कहा है कि विलायत से अनेक बड़े बड़े मानी प्रतापी छोटे लाट गवर्नरजनरल आदि आया करते हैं, भारतवासी जब २ किसी बड़े लाट बड़े शासक को आता देखते जानते हैं तभी भारत की दीन हीन मन मलीन तनक्षीण प्रजा के अर्थ कुछ न कुछ मांगने के लिये अग्रसर होते हैं कोई अंग्रेज़ों के से अधिकार भारतवासियों को मिलना मांगता है, कोई गोहिंसा की निवृत्ति होना, कोई प्रेस ऐक्ट उठादेना, कोई कर घटाना, कोई कानूनकी कड़ाईको घटाना इत्यादि सैकड़ों प्रकार की भिक्षा मांगते हैं सो क्या सर्वांशकी भिक्षा वे लोग देदेंगे? अर्थात् कदापि नहीं, इस लिये हे भारत वासियो! तुम दीनताको छोड़के स्वयं अपना आचार विचार ठीक करो और जो कुछ मांगना चाहते हो उसे विश्वम्भर भगवान् से सब के सब एक स्वर

होकर मांगो तो आशा है कि वह तुम्हारी आशाएं कभी पूरी अवश्य करेगा ।

अभिप्राय यह है कि शास्त्रार्थोंमें स्वार्थसे भिन्न लक्ष्यार्थके बोधक ऐसे सहस्रों विचार जैसे हैं वैसे ही परिसंख्यारूप शास्त्रों के सब वाक्य स्वार्थ से भिन्न लक्ष्य की निवृत्ति करने के लिये कहे गये हैं। इस प्रकार मांसके पिण्ड श्राद्ध में दिखानेका स्वार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ यह है कि यद्यपि हिंसा जनक होने से सदा सबके लिये मांस भक्षण का और मांस के-पिण्ड करने का निषेध है तथापि राग प्राप्त होने से मांस भक्षण को जो नहीं त्यागते वा यों कहो कि मांस के खाये बिना जिनसे रहा ही नहीं जाता अथवा कोई ऐसे देश वा काल होते हैं जहां किसी भी कारण मांस भक्षण करने ही पड़ता हैं शास्त्र की आज्ञा से विरुद्ध होने पर भी उन मांसभक्षण करने वाले मनुष्यों के लिये वे परिसंख्यारूप वचन कहे गये हैं जिन का अभिप्राय यह है कि जिन मत्स्यादि प्राणियोंके नाम गिनाये हैं उनसे भिन्न प्राणियोंके मांस से पिण्डदान कदापि मत करो किन्तु मनुजी का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि इन मत्स्यादिके पिण्ड अवश्य दो, क्योंकि इसी से मनु जी ने स्पष्ट कोई विधिवाक्य नहीं कहा केवल अर्थवाद कहा है उस अर्थवाद से परिसंख्या की कल्पना की जाती है। उस का मत्स्यादि से भिन्न मांस के निषेध में तात्पर्य है मत्स्यादिके विधान में पूर्व कही रीति से अभिप्राय कदापि नहीं है।

अब रहा यह कि किसी जीवके मांस के पिण्डों से पितरों को अधिक २ तृप्ति क्यों दिखायी है ? तब इस का भी समाधान सुनिये कि मनु अ० ३ श्लोक २६८। २६९। २७०। इन तीन श्लोकों में कहे मांसपिण्डों का खण्डन २७१ में कहे गौ के खोया व खीर के पिण्डों की मांससे अधिक प्रशंसा दिखाने से हो जाता है क्योंकि उस का स्पष्ट अभिप्राय यही है कि मांस हिंसाजन्य होने से दुष्प्राप्य और सदोष है तथा गोदुग्ध सर्वथा निर्दोष और सुलभ है और तीनों श्लोकों में कहे मांसों से अधिक तृप्ति भी गोदुग्ध से ही होती है इन तीन कारणों से सब को सूचित किया है कि मत्स्यादि के मांस के

पिण्डों की अपेक्षा गोदुग्ध जन्य खोया वा खीर से पिण्डदान करना बहुत अच्छा है। और २६१ । २७२ श्लोकों में कहे मांस के पिण्डों का खण्डन २७२ में कहे कालशाक और मुन्यन्न नीवारादि के पिण्डों से किया जानो क्योंकि कालशाक तथा मुन्यन्न दोनों ही हिंसादोष रहित और वार्ध्रीणसादिके माँससे सुलभ हैं। ऐसा कौन मूर्ख है जो सुलभ निर्दोष वस्तु के प्राप्त होते भी और उससे फल भी अधिक होना देख के भी कम फल वाले सदोष दुर्लभ मांस के पिण्ड करने के तयार होगा।

और २७३ । २७४ दो श्लोकोंसे मघा नक्षत्र युक्त भाद्रपदकी कृष्ण त्रयोदशीके दिन किये पिण्डदानकी सर्वोपरि प्रशंसा दिखानेसे मांस पिण्डवाले सब श्राद्धपिण्ड नीची कोटिमें पड़ जाते हैं सो यह नीची कोटि में होजाना भी एक प्रकार का मांसपिण्डों का खण्डन है पर असली शास्त्रीक समाधान यही है कि ये मांस पिण्ड सम्बन्धी वचन परिसंख्यारूप होने से तद्भिन्न मांस के प्रतिषेधार्थ हैं विधानार्थ नहीं हैं। अब आशा है कि पाठक लोग समाजी कृत प्रश्न का समाधान समझ गये होंगे, यह समाधान मीमांसा की रीति से लिखा गया है इस कारण विशेष ध्यान देकर पढ़ने से ठीक समझमें आवेगा। यदि तब भी तुम्हारे समझ में न आवे तो किसी विद्वान् से समझ लेना चाहिये। और प्रश्नकर्त्ता सन्तराम समाजी से पूछना चाहिये, कि श्राद्ध में जो पिण्ड दिये जाते हैं उनके ब्राह्मणों को खिलानेका प्रमाण दो या अपने लेखको मिथ्या मानलो।

उक्त अष्टम प्रश्न के अन्त में लिखा है कि "यहां उस मांस खाने वालों की २४ घंटे भी तृप्ति नहीं होती तब परलोक में पितरों की इतने दीर्घ काल तक तृप्ति कैसे होती होगी?" इसका उत्तर संक्षेप से यह है कि देव योनि के पितर आदि प्राणी स्वभाव से ही अमृतांशके ग्राही हैं। और वह अमृतांश अनेक दर्जों का होता है। जैसे संसार में कोई वस्तु शीघ्र विकृत हो जाता है और कोई चिरकाल तक विकृत नहीं होता ज्यों का त्यों बना रहता है वैसे ही अमृतांश भी नहीं बिगड़ता जो अमृतांश जितना अधिक चिरस्थायी होता है उस से

वैसे ही अधिकाधिक तृप्ति दिखाती है। इस में छान्दोग्योपनिषद् का यह प्रमाण भी है कि—

न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति।
एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥

देवयोनिस्थ प्राणी इन पाञ्चभौतिक स्थूल पदार्थों को न खाते न पीते हैं किन्तु उनके अमृतांशको देख स्वीकार करके ही तृप्त हो जाते हैं मानवी शक्ति ऐसी नहीं है कि वे इन पदार्थों के अमृतांश को ले सकें इस कारण मनुष्योंकी वैसी तृप्ति नहीं होती परन्तु उक्त लेख से अनुमान होता है कि प्रश्नकर्त्ता सन्तराम समाजी मांसपार्टी के महात्मा हैं तभी तो उन की मांस खानेसे २४ घण्टा भी तृप्ति नहीं हुई होगी इसीसे वैसा लिखा होगा॥

प्रश्न ६—मनुस्मृति अ० ३। २७३ एक कल्प पर्यन्त अपने पितरों की तृप्ति करने की युक्ति लिखी है उसे यदि सत्य समझते हो तो बतलाओ कि क्या परमात्मा कल्प भर उन को किसी प्रकार का जन्म नहीं देते अगर देते हैं तो सब देहियों के भरण पोषण का प्रबन्ध जब विश्वपालक परमात्मा स्वयं करते हैं तब ऐसी तृप्ति से क्या मतलब? और अगर कल्प भर में एक ही जन्म परमात्मा देते हैं तो अन्य शास्त्रों में जहां शरीर त्याग के साथ (तत्काल) ही जन्म धारण लिखा है। इस विरोध का ज़िम्मेदार कौन?। और अगर इस विरोध की कोई संगति है तो क्या?

उत्तर ६—पाठक वर्ग! समाजी महाशयका यह प्रश्न विना नीव की भीत के समान निर्मूल इस कारण है कि मनुस्मृति के अ० ३। २७३ श्लोक में कल्पभर तक पितरों की तृप्ति का कुछ भी नाम नहीं है न वहां टीकाकारों ने ही वैसा अर्थ किया है। किन्तु मनु के मूल में (तदप्यक्षयमेवस्यात्०) लिखा है कि भाद्रपद कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी को मघा नक्षत्रमें किये श्राद्ध से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है अर्थात् उस समय के श्राद्ध का अविनाशी वा अनन्त फल होता है यहां कल्प भर का नाम भी नहीं है। अक्षय शब्द का अर्थ कल्प भर कदापि नहीं हो सकता क्योंकि कल्प भी एक अवधि है यदि कल्पभर के बाद वह पुण्य क्षीण हो गया तो

भी अक्षय नहीं रहा। यह व्यवहार लोक में भी दीखता है कि कोई बड़ा राजा किसी विद्वान् पर वा अन्य किसी मनुष्य पर किसी काम से इतना अधिक प्रसन्न होजाय कि उसे एक राजा बना दे और उस की कोई हद् न करे तो जब तक संसार में उस की सन्तति चलेगी तब तक उस को अक्षय फल प्राप्त हो गया क्योंकि बड़ा राजा भी उस को राजा बनाने की कोई हद् नहीं करता और अक्षय व अनन्त शब्द का भी अर्थ यही है कि जिसकी कोई अवधि नियत न हो वही अनन्त है वा वही अक्षय है। चाहे वह फल किसी अपने किये वा अन्य किसी भी कारण से कभी नष्ट भी होजाय तो वह उस दाता की ओरसे अक्षय वा अनन्तही माना जायगा। अनुमान होता है कि प्रश्नकर्त्ता समाजी पितृयोनि के जन्म को जन्म नहीं मानते हैं। यदि ऐसी बात है तो बड़ा ही प्रबल अज्ञान है और ऐसे महा अज्ञानान्धकार की कोई औषध भी नहीं है। समाजी को चाहिये कि हृदय के चक्षुओं में ज्ञानांजन लगावे।

"परमात्मा उनको कल्प भर किसी प्रकार का जन्म नहीं देते? यदि देते हैं तो तत्काल जन्म देनेकी व्यवस्था कहां रही" यह वितर्क सर्वथा ही वे समझी से किया गया है क्योंकि जब पितृयोनि में जितने काल के लिये किसी भी साकार वा निराकार ने जन्म दिया है उसके भीतर तो अन्य जन्म देने की वा न देने की शंका उत्पन्न ही नहीं होसकती। क्योंकि ऐसे तो समाजी पर भी शंका हो सकती है कि सौ वर्ष तक के लिये किसी समाजी का जन्म हो अर्थात् १०० वर्ष तक जीवित रहे तो तत्काल जन्म देने की व्यवस्था कहां रही यदि किसी का जन्म होते ही मरे फिर तत्काल ही जन्म हो फिर तत्कालही मरे तो जानो व्यवस्था चले तो सभी समाजियोंको क्या जीवित ही न रहना चाहिये। यदि वे पितर लोग पितृयोनि में एक कल्पसे भी कम रहें वा एक कल्प से भी अधिक रहें और फिर अन्य देवादि योनियों में जावें तो भी वह मघानक्षत्र युक्त भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के लिये श्राद्ध का फल अन्य जन्मों में फलदायक होते जानेसे अक्षय वा अनन्त कहा माना जायगा जैसे संसारमें ऐसे

महा घोर अधर्म भी बहुत हैं जिनका बुरा दुःख फल असंख्य जन्मों तक होता ही जाता है वैसे ही धर्म पुण्य भी अनेक हैं जिनका शुभ फल अनन्त वा अक्षय होता है हम पूछते हैं कि अन्योंको अक्षय फल होते देखकर समाजी का पेट क्यों पिराता है? जब कि इतने जन्मों तक किसी कर्म का फल भोगा जाना युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध है जिसके लिये कोई अवधि नहीं कर सकता तब भाद्रपदकी मघायुक्त त्रयोदशी के दिन श्रद्धा और विधि पूर्वक किये मृतोद्दिष्ट श्राद्ध का भी वही अनवधिक अक्षय फल है उसमें भी किसी कुतर्क को अवकाश नहीं हैं। और जब ईश्वर भी कर्मानुसारही सबको शुभाशुभ फल देता है यही स्वा० दयानन्द जी का भी मन्तव्य है ऐसा ही सब आर्यसमाजी भी [जो स्वमताभिज्ञ हैं] मानते हैं तब न जाने प्रश्नकर्ता सन्तराम समाजी ने अपने मतसे विरुद्ध (सब देहियों के भरण पोषण का प्रबन्ध जब विश्वपालक परमात्मा स्वयं करते हैं) ऐसा क्यों लिखा है? यहां स्वयं कहने से समाजी ने कर्मवाद की निवृत्ति दिखाई है और यदि कर्मानुसार माना जायगा तो श्राद्ध भी एक कर्म है उसके अनुसार फल देने से श्राद्ध की सिद्धि होगई। इस से समाजी का प्रश्न सर्वथा ही कट जाता है इटावा के छपे प्रश्नों में तीसरा प्रश्न यह लिखा है कि—

प्रश्न ३—कौओं और पितरोंमें क्या सम्बन्ध (रिश्तेदारी) है जो श्राद्धमें विशेष कर उन्हें ही भोजन (कागौर) दिया जाता है। क्या कौवा पितरों के बीचमानी (मध्यस्थ) प्रतिनिधि कारिन्दा (पितृदूत) या हलकारा हैं?

और लाहौर वाले प्रश्नोंमें सत्रहवां प्रश्न यह है कि—कौओं और कुत्तों का पितरोंसे क्या सम्बन्ध है?।

उत्तर—क्रिया में पिण्ड का स्पर्श कौओं को कराना चाहिये ऐसी जो आग्रह की विधि लिखी है उस से यह अनुमान तो नहीं होता कि जिस प्रकार आजकल पार्सी लोग अपने मुर्दों को जानवरों से खिलाते हैं पुराने हिन्दू भी अपने मुर्दों को इसी प्रकार कौओं कुत्तों के अर्पण करते होते थे और पीछे विचार वानों ने प्रेतका दाह संस्कार ही उत्तम जान इस प्रथा को बन्द

किया और संस्कार जारी किया। अगर यह सत्य है तो हमें मृ-
तक श्राद्ध में संस्कार न करना अर्थात् मृतक पूजा छोड़ जीवित
पितरोंकी श्रद्धा भक्ति से प्रसन्नता सम्पादन न करनी चाहिये क्या?

उत्तर ३। १७। पाठक महाशय! वास्तवमें तो दोनों ही समा-
जियों का यह प्रश्न बेसमझीका है तथापि कौओंको पिण्ड स्पर्शादि
कराने की कल्पना और पार्सियों के दृष्टान्त से अपने बाप दादों के
शरीरों को कौओं कुत्तों को खिलाने की युक्ति प्रमाण विरुद्ध समाजी
की कल्पना सर्वथा ही निर्मूल मनमानी है तब सोचिये कि ऐसी व्यर्थ
बातों का वैसा ही उत्तर देना क्या हमारा काम है? अर्थात् कदापि
नहीं तथापि हम मूल बात का संक्षेप से उत्तर लिखते हैं। प्रथम तो
समाजियों से ही पूछना चाहिये कि तुम्हारी पञ्चमहायज्ञ विधि और
संस्कार विधि में जो कुत्ता कौआ चाण्डाल पतित पाप रोगी और
कृमियोंको नित्य २ भोजन देना लिखा है सो उन कौओं कुत्तों आदि
से समाजियों की क्या २ रिश्तेदारी है? क्या कौओं कुत्तोंसे अधिक
अच्छे पशु पक्षी और नहीं हैं जो उन को नित्य २ भोजन देना लिखा
जाता? । जब स्वा० दयानन्द जी ने गो करुणानिधि पुस्तक बनाया
था तब सब से अधिक उपकारी पशु गौ को लिखा था सो गौ को
नित्य २ भोजनांश देना क्यों नहीं लिखा? और श्वकरुणानिधि तथा
काककरुणानिधि पुस्तक क्यों नहीं बनाये? पाप रोगी और चाण्डा-
लादि को तो नित्य २ भोजनांश दिया जाय परन्तु अन्य रोगियों को
तथा चर्मकारादि को क्यों नहीं दिया जाय? क्या समाजी लोग
कौओं कुत्तों आदिको नित्य २ भोजन दिया करते हैं? इत्यादि प्रश्नों
के उत्तर समाजी से मांगने चाहिये॥

अब रहा सनातनधर्म की ओर से समाधान, सो सनातनधर्म
की श्राद्धपद्धतियों में श्राद्धान्न कौओं को खिलाना कहीं भी लिखा
नहीं दीखता इसी कारण समाजियों के प्रश्न में भी किसी प्रमाणका
नाम नहीं लिखा। इस दशा में समाजियों का यह प्रश्न किसी
सनातनधर्म के मान्य प्रमाण पर तो रहता ही नहीं किन्तु किन्हीं
मनुष्योंको श्राद्धावसर में कौओंको अन्न खिलाते देखने सुनने पर यह
समाजियों का प्रश्न होना सम्भव है। ऐसी दशा में इस पर विशेष

उत्तर की आवश्यकता नहीं है केवल इतना ही उत्तर पर्याप्त है कि सनातन धर्म का मैदान बड़ा अनवधिक लम्बा चौड़ा है किन्तु एक देशी समाजी आदि मतों के तुल्य संकुचित नहीं है। सनातन धर्मियों के कौआ कुत्ता कृमि कीटादि सभी रिश्तेदार हैं सो इतना ही नहीं किन्तु शिव जी के भूषण होने से सर्प वृश्चिकादि भी पूज्य हैं, विष्णु भगवान् के चिन्ह जड़ कहाते पर भी पूज्य हैं, वृन्दावन की भूमि, वहां के वृक्ष गोवर्धन पर्वत की एक २ रज भी तो पूज्य है। जिस पृथिवी में कृष्ण भगवान् के चरण पड़े हैं वह भूमि महा पवित्र होने से परमपूज्य है अभिप्राय यह है कि सामान्यतया ईश्वर देव सब में उसी २ के रूप से विद्यमान होने से उस एक में सच्चिदानन्द रूप से ईश्वर को देखते हुए उसी की पूजा भक्ति नमस्कार प्रणाम करना सनातनधर्म का गूढ़ सिद्धान्त है इसी विचारसे वेद में लिखा है कि–

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च । यजुर्वेद अ० १६ ।

शुनिचैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः । गीता० ॥

कुत्तावच्छिन्न चिदात्मक ब्रह्मको नमस्कार है तथा कुत्ता ब्राह्मण चाण्डालादि में सच्चिदात्मक भगवान् एक ही रूप से विद्यमान है जैसे कि सुवर्ण, चांदी, पीतल और मट्टी के घड़ों में जो पोल रूप आकाश है वह सब घड़ों में एक ही रूप है वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि में तथा पश्वादि में एक ही ईश्वर एक ही रूप से विद्यमान है, इस से कुत्तादि सभी प्राणी ईश्वरभाव से पूज्य हैं और सुवर्ण, चांदी, मट्टी, ब्राह्मण, क्षत्रियादि वा कुत्तादि उपाधियों का भेद व्यवहार के लिये है इस से सामान्यतया सभी पूज्य हैं ॥

और विशेष यह है कि जिस प्रकार का जब और जिस प्रयोजन से जिन २ चर अचर प्राणियोंका पूजन वा भोजनादि देना श्रुतिस्मृति पुराणादि में लिखा है वह शब्द प्रमाण सनातन धर्मियों को निर्विकल्प मन्तव्य है। श्राद्धान्न कौओं को खिलाना सबके लिये विराट् सिद्धान्त नहीं है इसीलिये श्राद्धपद्धति आदि पुस्तकोंमें प्रमाण नहीं लिखे गयेपरन्तु किन्हीं आचार्यों का मत है. जैसे कि मनु० अ०३ २६१ में।

वयोभिः खादयन्त्येके प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सुवा ॥

कोई आचार्य श्राद्ध के पिण्डों को पक्षियों को खिलाते हैं और कोई अग्नि में वा जल में गिराने को कहते हैं। इसी कारण श्राद्धकर्त्ताओं में सर्वत्र कौओं को अन्न खिलाने का प्रचार भी नहीं हुआ है। तथा श्राद्ध से भिन्न जो काकबलि का विधान है वह तो इससे भिन्न है। जब कि समाजियों के लिये सभी धर्म सम्बन्धी कर्त्तव्य शंकास्पद हैं तब किसी काकबलि आदि एक दो विचार पर शिरपच्ची करना भी व्यर्थ है। प्रश्नकर्त्ता समाजियों को किञ्चित् भी संकोच नहीं हुआ कि जब हमारे मतमें तो कौओंको नित्य २ भोजनांश देना लिखा है तब अन्यों पर वही प्रश्न क्यों करते हैं ? ॥

प्रश्न १०–इस समय जहां कहीं तीन ही पीढ़ियों तक श्राद्ध करने की विधि प्रचलित है कृपया बताइये इसका तात्पर्य क्या ! जब कल्प पर्यन्त पितरों को दूसरा जन्म मिलता नहीं तब पहिले पितरों की तृप्तिका क्या प्रबन्ध होगा ! अगर उनको परमात्माकी तरफसे मिलता है तो इन नये मरे तीन पितरों को क्या परमात्मा भूखे रक्खेंगे ? ॥

यह तो लाहौर वाले समाजी का दशवां प्रश्न है और इटावा वाले का चौथा प्रश्न ४–तीन पीढ़ी तक ही श्राद्ध करने का नियम है उसके पहले (५ । ६ पीढ़ी आदि के) पुरुषों की क्या गति होती है ? ॥।

उत्तर १० । ४ का–यह प्रश्न कुछ अच्छा इस लिये भी है कि वेदादि शास्त्रोंके गूढ़ाशयोंको न जानने समझने वाले सहस्रों सनातन धर्मियों को भी यह सन्देह उठ सकता है कि तीन ही पीढ़ी तक के पितरों का श्राद्ध तर्पण क्यों किया जाता है ? । चौथे वृद्ध प्रपितामह के लिये श्राद्ध तर्पण सर्वथा ही क्यों बन्द किया है ? । बिना पढ़े मूर्ख समाजी भी वेद २ चिल्लाते और वेद को जानने मानने का दम भरते हैं यदि समाजियों को श्रुति स्मृतिका बोध होता तो वे प्रमाण पर अवश्य कुछ विचार लिखते। अस्तु–अब समाधान सुनिये सनातनधर्मियों का अटल मन्तव्य है कि श्रुति स्मृति पुराणादि शास्त्रोंमें लिखे विचार को अटल रूप से मानना चाहिये यही बात

करण महाभाष्य के कर्त्ता पतञ्जलि मुनि ने लिखी है और भगवद्गीता में भगवान ने स्वयं भी यही आदेश किया है कि——

शब्दप्रमाणका वयं यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम् ॥ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्तेकार्याकार्य व्यवस्थितौ । ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्त्तुमिहार्हसि ॥ अ० १६ ॥

भापार्थ—जिस से कि हम शब्दप्रमाण के मानने वाले होने से आस्तिक हैं इसी से हमारा काम है कि जो कुछ हमारे माननीय श्रुतिस्मृति रूप शिष्ट प्रमाणित शास्त्रमें लिखा है उसको विना किसी प्रकार की हुज्जत बाजी के मानें और वैसा ही करें। जब किसी काम में शंका हो कि यह काम कर्त्तव्य है या अकर्त्तव्य है अथवा किस प्रकार से कर्त्तव्य है तब प्रामाणिक अच्छे विद्वानों की सम्मति से श्रुतिस्मृति रूप शास्त्रों का विधान उस अंश में जानकर शास्त्रकी आज्ञानुसार करना चाहिये। पाठकगण! अब देखिये श्रुतिस्मृतियों में इस विषय पर क्या लिखा है?॥

न चतुर्थः पिण्डो भवतीति श्रुतेः। पारस्करगृह्ये पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्य मश्नुते ॥ अथ पुत्रस्यपौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोतिविष्टपम् ॥ १३७ ॥

त्रयाणामुदकंकार्यं त्रिषुपिण्डःप्रवर्त्तते ।

चतुर्थःसंम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥१८६॥ मनु ८

भा०—महर्षि पारस्कराचार्य अपने गृह्यकल्पसूत्रमें मृतपितरों के श्राद्ध तर्पण विधान प्रकरण में कहते हैं कि मृतपितरों को तीन ही पिण्ड देने चाहिये, चौथा पिण्ड नहीं दिया जाता ऐसा श्रुति नाम वेद में लिखा है। यद्यपि इस विचार को धर्मशास्त्रों के निर्माता महर्षियोंने वसु रुद्र और आदित्यस्वरूप पितरों का श्राद्ध तर्पण दिखाते हुए यह तात्पर्य दिखा दिया हैं कि पुत्र अपने पिता का श्राद्ध करता

हुआ पिता को वसुस्वरूप कहता है, पौत्र के समय वही रुद्रस्वरूप पितामह कहा जाता और प्रपौत्र के श्राद्ध तर्पण करते समय वही आदित्य स्वरूप होजाता और कहाता है इसीसे यह सिद्ध हैं कि तीन पीढ़ी तक शास्त्र की आज्ञानुसार विधि पूर्वक श्राद्ध के साथ श्राद्ध तर्पण रूप पितृयज्ञ होतेजाने पर चौथा ऊपर वाला त्रिलोकी रूप ब्रह्माण्ड संसारसे पार होकर मुक्त हो जाता है इसलिये वसु-रुद्र और आदित्य तीन ही स्वरूप वाले पितरों को त्रिलोकी रूप संसार सागर के पार सच्चिदानन्द स्वरूप मोक्ष दशा में पहुंचा देने के लिये तीन पीढ़ियों तक के पितरों का ही श्राद्ध तर्पण करना माना गया है। तथापि मनु जी ने अ० ६ में एक दो श्लोकों द्वारा इस बात को स्पष्ट कह दिया है कि—पुत्र के किये श्राद्ध तर्पण से पिता स्वर्गादि लोकों को प्राप्त हो जाता और पौत्र के किये श्राद्ध तर्पणसे वही स्वर्गादि में अनन्त सुखों को प्राप्त होता है [यहां मानुषी भोगोंकी अपेक्षा से स्वर्गादि का भोग अन्त वाला है, इससे निरपेक्ष अनन्त नहीं, इसी कारण श्राद्धादि की आवश्यकता आगे रहती है] तथा प्रपौत्र के किये श्राद्ध तर्पण से वही पुरुष ब्रह्मके विष्टप नाम अन्तिम कोटि, को भी प्राप्त हो जाता है अर्थात् तीन पीढ़ी तक के श्राद्ध तर्पणसे त्रिलोकीके बन्धनोंसे छूटकर मोक्षका भागी हो जाता है। इसलिये वेद की आज्ञानुसार अपनेसे ऊपरके पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीन के लिये ही तर्पण और तीनके लिये ही श्राद्ध में तीन ही पिण्ड देने चाहिये, वेद का अभिप्राय लेकर ही तीन को तीन पिण्ड देने की परम्परा सनातन काल से सनातन धर्म में चली आती है तीन का श्राद्ध तर्पण करने वाला चौथा होता है इस से भिन्न श्राद्ध तर्पण में पांचवे का होना प्रमाण सिद्ध नहीं है आशा है कि इस शास्त्र प्रमाण युक्त तीन पीढ़ी तक के श्राद्ध तर्पण सम्बन्धी उत्तर को समाजी लोग तथा जिन को शंका हो मान कर सन्तुष्ट होंगे। वेदादि में इस विचार के अनेक प्रमाण हैं उन को, विस्तारभय से हम ने यहां नहीं लिखा है॥

पाठक महाशय ! लाहौर वाले समाजी के प्रश्न में देखिये "कहीं तीन ही पीढ़ियों तक श्राद्ध करने की विधि प्रचलित है,, यह कैसा महा अज्ञान है ? । आप लोग समाजी से पूंछ सकते हैं कि जब कहीं तीन ही पीढ़ियों तक श्राद्ध विधि का प्रचार है तो अन्यत्र जहां २ चार पांच आदि पीढ़ियों तकके लिये श्राद्ध में चार पांच आदि पिण्ड दिये जाते हों सो हे समाजी ! तुम दिखाओ ? । जिन समाजियों को लोक व्यवहार और शास्त्र मर्यादा दोनों की जानकारी नहीं हैं तथा सर्वथा अज्ञान घेरे है उन को ऐसे बे समझी के प्रश्नों द्वारा अपना उपहास कराने में कुछ भी लज्जा वा संकोच नहीं होना यही आश्चर्य है । और एक कल्पपर्यन्त पितरों का अन्य जन्म नहीं होता यह अपनी मनमानी कल्पना समाजी ने की है। ईश्वर भगवान् उस २ के स्वयं किये वा पुत्र पौत्रादि नाम से उसी के किये धर्म कर्मों के अनुसार ही सब प्राणियों को जन्मादि फल देता है ॥

प्रश्न ११-पितृयोनि अगर कैद है तो सरकार जिस प्रकार अपने कैदियों को अन्नादि देती है दया घन परमेश्वर उन्हें कुछ न देगा क्या ? परमेश्वरकी दयालुतासे श्राद्ध करने वाले की दयालुता बहुत है क्या ? ॥

उत्तर ११ -वास्तव में तो यह भी प्रश्न बेसमझी से संख्या बढ़ाने के लिये किया गया है। तौ भी कुछ उत्तर लिखे देते हैं कि पितरों की भी एक योनि होनेसे सवांशमें स्वतन्त्र तो नहीं है परन्तु मनुष्य योनि से बहुत ही स्वतन्त्र है क्योंकि पितृलोक भी स्वर्ग का ही एक अंश है । देवयोनियोंकी अपेक्षा मनुष्य योनि अत्यन्त पराधीन होने से अधिक कर कैद है मनुष्य की अपेक्षा पितृ देव एक प्रकारसे मुक्त हैं। मनुष्योंमें भी राजा की अपेक्षा प्रजा विशेष कैदमें है इस प्रजा में भी आर्यसमाजी लोग कई कारण वश सबसे अधिक कैदी हैं। सो यह पराधीनता रूप कैद तो सापेक्ष सर्वत्र विद्यमान है परन्तु समाजी का अभिप्राय तो आज कल की रूढ़ि जेलखानों के तुल्य कैदसे ज्ञात होता है यद्यपि पितृयोनिके लिये घेरा खिचा हुआ कोई जेलखाना नहीं बना है तथापि दुर्जनतोषन्याय से हम समाजीकी बातको मान

ही लें तो भी शोचना यह है किसी गण्य मान्य प्रतिष्ठित समाजीको किसी अपराधमें सज़ा हो जावे तो अनेक समाजी मिलके चन्दा करते और समाजी वकील विना फीस लिये उस कैदी समाजीको निरपराध सिद्ध करने की चेष्टा करते देखे जाते हैं। तब हे प्रश्नकर्त्ता समाजी ! सत्य कहो ! कि वहां तुम ऐसा प्रश्न क्यों नहीं करते कि वह मनुष्य अपने कर्मानुसार जेलमें गया है दयालु सरकार उसको अन्नादि देती है हम उसको जेल से छुड़ानेका उपाय क्यों करें ? । यदि वैसा प्रश्न नहीं करते तो अपने कर्त्तव्य वा मन्तव्यसे विरुद्ध तुम्हारा यह प्रश्न क्यों नहीं है ? अर्थात् कैदसे छुड़ानेका उपाय अनुचित क्यों समझते हो ? ॥

प्रश्न १२-जिनके सन्तान नहीं होती वह पितर क्या भूखे मरते हैं अथवा जिन जातियोंमें श्राद्ध करनेकी चाल नहीं और जो करते नहीं उनकी भूख मिटाने के लिये परमेश्वरके घर में कोई प्रबन्ध नहीं है ? (यह लाहौर वाले का प्रश्न है। इटावा वाले का पांचवां प्रश्न यह है कि) ५-जो निःसन्तान मरते हैं उनको अपने धर्मके अनुसार स्वर्ग प्राप्त होता है या नहीं क्योंकि शुकदेवजी भीष्मपितामह जी पञ्चशिखादि अनेक ऋषियों ने अपना विवाह ही नहीं किया था क्या उन उन धर्मात्माओंको उनके कर्मानुसार स्वर्ग प्राप्त नहीं हुआ होगा ? ॥

उत्तर १२ । ५-जिनके कोई पुत्र नहीं होता और उनलोगोंने स्वयं भी ऐसा पुण्य धर्म नहीं किया जिस से स्वर्ग वा मोक्ष के भागी वे लोग हो सकें तो इस में कोई भी सन्देह नहीं कि वे ही लोग जन्मान्तरोंमें भोजन वस्त्रादि से भी हीन होकर दुःखी रहते हैं। जो लोग पूर्वकालसे ही वेदोक्त श्राद्धादि कर्मों को नहीं मानते न करते हैं तथा जो आर्यसमाजी वेदोक्त श्राद्ध को नहीं मानते न करते हैं उनके पुत्र पौत्रादि विद्यमान होते परभी श्रेष्ठ गति उनकी कदापि नहीं होती। हमारा विश्वास तो यही है कि देश देशान्तरोंमें जोमनुष्यादि प्राणी भूखों मरते वाले देखे सुने जाते हैं वे प्रायः पूर्व जन्ममें श्राद्धके विरोधी समाजी आदि थे। यदि वे क़िसी अपने सामान्य शुभ कर्मके द्वारा भूखों मरने वालोंमें उत्पन्न न होकर धन सम्पत्ति वालेभी हों तो भी

आगे उन के सन्तान नहीं होते, वंश नहीं चलता। इससे श्राद्ध के विरोधी होना नास्तिकपन है। इस प्रसंग में ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा राजा हरिश्चन्द्र का उपाख्यान पुत्र विषय का समाजी और पाठकों के सन्तोषार्थ लिखते हैं। स्वामि दयानन्द जी ने भी ऐतरेय ब्राह्मण को मन्तव्य पुस्तकों में गिनाया है इस से आशा है कि समाजी लोग इस प्रमाण को अवश्य मानेंगे और सनातनधर्मी तो ब्राह्मण ग्रन्थों को निर्विकल्प वेद मानते ही हैं, इस से यह प्रमाण दोनों का मन्तव्य होगा। इक्ष्वाकुवंश में हरिश्चन्द्र नामक राजा हुए उन के सौ पत्नी थीं परन्तु पुत्र किसी रानी से नहीं हुआ था। उक्त राजा के यहां नारद पर्वत नामक ऋषि अतिथि रूप से आये तब उस राजा ने करबद्ध होकर पूछा कि—ऐत० पं० ७। अ० ३

येन्विमंपुत्रमिच्छन्ति येविजानन्तियेचन।
किंस्वित्पुत्रेणविन्दते तन्म आचक्ष्वनारद ॥ १ ॥

जो प्राणी पुत्र से होने वाले फल वा प्रयोजन को जानते हैं वा जो नहीं जानते वे सभी चाहते हैं कि हमारे पुत्र हो सो हे नारद ! आप मुझ से कहिये कि पुत्रके होनेसे पिताको क्या फल होता है? ॥ ऐसा पूछने पर नारदजीने दश ऋचारूप श्रुतियों द्वारा उत्तर दिया।

ऋणमस्मिन्त्सन्नयत्यमृतत्वंचगच्छति।
पितापुत्रस्यजातस्य पश्येच्चेज्जीवतोमुखम् ॥ २ ॥

मनुष्य के ऊपर जो ऋषि देव पितरों के त्रिविध ऋण हैं उनको यदि पुत्र उत्पन्न हो और इतने पल वा क्षणों तक भी जीवित रहे कि जिस में पिता जीवित पुत्र का मुख देख ले तो भी ऋष्यादिके ऋण उस पर आ जाते हैं, अर्थात् पिता उऋण हो जाता है ऋणों का भार पिता के शिर से उतर जाता है और इतने से भी नाम पुत्रके प- उत्पन्न हो जाने मात्र से पिता स्वर्गका भागी हो जाता है इस के प- श्चात् यदि अपने भी पुण्य स्वर्ग प्राप्ति के योग्य हों तो स्वर्ग में भी वैसे ही अधिक २ उत्तम भोग प्राप्त होंगे कि जैसे पुत्र के अभाव में नहीं हो सकते ॥

यावन्तःपृथिव्यांभोगा यावन्तोजातवेदसि ।
यावन्तोऽप्सुप्राणिनां भूयान्पुत्रेपितुस्ततः ॥ ॥ ३ ॥

भूमि पर, अग्नि लोक में और वरुणलोक में प्राणियोंके लिये जितने उत्तम २ भाग हैं उन सब से अधिक आनन्द वा जन्मान्तरमें सब से अधिक संसारी सुख भोग पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर पिता को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

शश्वत्पुत्रेणपितरोऽत्यायन्वहुलं तमः ।
आत्माहिजज्ञआत्मनः सइरावत्यतितारिणी ॥४॥

अपने ही हृदयादि सब अंशों से उत्पन्न हुए अपने ही द्वितीय रूपान्तर पुत्र से पितर लोग बड़े प्रबल पाप रूप अन्धकार के पार हो जाते हैं। जैसे इरावती नदी (जो प्रश्नकर्त्ता समाजोंके अति समीप है जिसका माहात्म्य लाहौरके सनातनधर्म प्रेमी विशेष जानते मानते हैं) स्नान करने वालों को अत्यंन्त तारने वाली है वैसे पुत्र भी पिता को अधिक तारने वाला होता है ॥ ४ ॥

किंनुमलंकिमजिनं किमुश्मश्रूणिकिंतपः ।
पुत्रंब्राह्मणाइच्छध्वं सर्वैलोकोवदावदः ॥ ५ ॥

शारीरिक मलोंकी शुद्धि करना, ब्रह्मचर्याश्रम में कृष्णाजिन धारण, सब केश श्मश्रु रखाना तप करना इत्यादि सबसे अधिक तारने वाला पुत्र है इस कारण हे ब्राह्मणो ! पुत्रकी इच्छा करो ॥५॥

अन्नंहप्राणःशरणंहवासो रूपंहिरण्यंपशवो विवाहाः । सखाहजायाकृपणंहिदुहिता ज्योतिर्हपुत्रः परमेव्योमन् ॥ ६ ॥

संसार में जैसे अन्न ही प्राणियों का जीवनरूप प्राण है, घर ही निवासका आश्रय, सुवर्ण ही सर्वोत्तम रूप, विवाह नाम स्त्री संयोग ही पशुवृत्ति· स्त्री ही सबसे अधिक मित्र और पुत्री ही सबसे अधिक निर्धन दयापात्र है वैसे ही प्रकाशरूप ही पुत्र है अर्थात् पुत्र वालेको

आगे पीछे कुछ दीखता है और पुत्रहीन का घर शून्य है उसके सब ओर अन्धकार है चाहें यों कहो कि पुत्र ही प्रकाश वाले स्वर्गादि पुण्यलोकों में पिता को पहुंचाता है। जिसका वंशच्छेद हो जाता है वही मरता है और जिसकी सन्तति चली जाती है वही सन्तानमें जीवित हुआ विद्यमान है वह मरता हुआ भी वास्तव में नहीं मरता। इसी से महर्षि लोग अपने वंशोंरूप से विद्यमान हैं इसी कारण अब भी तपस्वी होते हैं ॥ ६ ॥

पतिर्जायांप्रविशति गर्भोभूत्वाऽसमातरम् ।
तस्यांपुनर्नवोभूत्वा दशमेमासिजायते ॥ ७ ॥

पति अपनी पत्नीमें प्रवेश करता गर्भरूप पति की उस मातारूप पत्नी में फिर से नया सुन्दर बालरूप धारण करके दशवें मास में उत्पन्न हो जाता है। एक ही मनुष्य अपने नवीन २ रूप शरीर बनाता जावे और पुराने २ वृद्ध शरीरों को त्यागता जावे इस काम के लिये पत्नी रूप स्त्री एक प्रकार की कल है ॥ ७ ॥

तज्जायाजायाभवति यदस्यांजायतेपुनः ।
आभूतिरेषाचभूति–र्बीजमेतन्निधीयते ॥ ८॥

जिस से कि–उस पत्नी में अंशरूप से प्रवेश करके पुत्ररूप से पति जायमान नाम फिर से प्रकट होता है इसी से पत्नी का नाम जाया हुआ है। और जाया तथा जननी इन दोनों शब्दों का एक ही शब्दार्थ है जननी नाम माता का है भेद केवल इतना है कि वह पतिरूप शरीर की पत्नी और पुत्ररूप प्रत्यंग की जाया वा जननी है वह उत्पन्न हुआ सन्तान आभूति कहाता और गर्भाशय में स्थापित हुआ बीज भूति कहाता है ॥ ८ ॥

देवाश्चैतामृषयश्चतेजः समभरन्महत् ।
देवामनुष्यानब्रुवन्नेषावोजननीपुनः ॥ ९ ॥

पहिले सर्गारम्भ के समय देवता और ऋषियों ने सृष्टि उत्पन्न की वा जब २ वे लोग सृष्टि करते हैं तब महातेजोमयी सूक्ष्मरूप स्त्री

से संग करते हैं अर्थात् सूक्ष्मभूतोंके शुद्ध सूक्ष्म स्त्रीत्व प्रधान अंशों से योगशक्ति द्वारा संयोग करके सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं किन्तु महाभूतों से बनी मांस ,हड्डी रुधिरादि के शरीर वाली स्त्रियों से ऋषि देवताओं ने कभी संयोग नहीं किया अथवा यों कहो कि जब तक ऐसा किया तभी तक वे ऋषि देवता पूर्णरूप से कहाते रहे और जब से पांच महाभूतों की मांसास्थिमयी स्त्री से संग किया तभी से मनुष्य हो गये और जिसने वैसा नहीं किया वे ऋषि देव बने रहे। मनुष्यों में भी ऊर्ध्वरेता रहने वाले वा विवाह करके एक ही पुत्र उत्पन्न करने वाले भी द्वितीय कोटि के ऋषि कहाये। देवोंने मनुष्यों से कहा कि जिस पत्नी में पुत्र नाम रूप से तुम एकवार उत्पन्न हो गये वह पीछे तुम्हारी जाया जननी माता होगयी ॥ ६ ॥

इस ऊपर कहे विचार को मानने वाले ऋषियों का मत है कि स्त्री में एक पुत्र होजाने तक ही पति पत्नी सम्बन्ध माना जावे जैसा महर्षि जरत्कारु आदि अनेकों ने किया है। इस पक्ष में काम सुख भोगार्थ विवाह नहीं माना जाता किन्तु एक पुत्र हो जाने पर दोनों स्त्री पुरुष जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य से तप करें और पुरुष पत्नी को मातृवत् समझने लगे। पुत्र के विना स्वर्गादि उत्तम लोक प्राप्त नहीं होते यह तो श्रुति का मत है और मनुस्मृति में लिखा है कि ब्रह्मचर्य धारण करके बहुत काल जप तप करने से स्त्री वा पुरुष दोनों ही पुत्रोत्पत्ति किये विना भी स्वर्ग के भागी हुए और हो सकते हैं। इन श्रुति स्मृति दोनों में किसीको विरोध जान पड़े तो समझने का दोष जानो। श्रुति का अभिप्राय है कि जिस के पुण्य कर्म प्रबल नहीं किन्तु मध्यम वा निकृष्ट हैं और उन का पुत्र अच्छा हो तो पुत्र के होने से पिता को स्वर्ग प्राप्त हो जायगा और नरक से बचेगा। और पुत्रों के द्वारा पिता को मोक्ष तक प्राप्त हो सकता है अर्थात् जिस के पुत्र विद्यमान हैं उस के उत्तम कर्म न होने पर भी उसकी अधोगति नहीं हो सकती किन्तु स्वर्ग होगा यह तो श्रुति का अभिप्राय है और मनुस्मृति का अभिप्राय यह है कि जिस के

पुत्र नहीं उस स्त्री वा पुरुष को ब्रह्मचर्य के नियम से स्वयं किये प्रबल जप तप से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति पुत्र के अभाव में भी हो सकती है अर्थात् प्रबल पुण्य न हो तो पुत्र हुए विना सद्गति नहीं हो सकती यह तो श्रुति का आशय है और अपने किये प्रबल पुण्य से पुत्रके अभाव में भी सद्गति हो सकती है यह स्मृति का तात्पर्य है अपने २ अंश में दोनों ठीक हैं विरोध कुछ नहीं है ॥

यदि कोई महाशय यह प्रश्न करें कि (नामुत्रहिसहायार्थं०) जन्मान्तर में पुत्रादि लोग पिता को सुख नहीं दे सकते । इस दशा में पुत्र के किये श्राद्ध का फल पिता को नहीं मिलेगा इससे श्राद्ध व्यर्थ हुआ तो इस का समाधान यह है कि स्त्री पुत्रादि मुझे परलोक में सहायता देंगे इस भरोसे पर अपने कर्त्तव्य धर्म को मनुष्य न भूल जावे क्योंकि पुत्रादि चिरजीवी होकर पिता के बाद बने ही रहें यह नियम भी तो नहीं है, कदाचित् पहिले वा साथ में ही वा पिता के पश्चात् ही पुत्र भी मर जावे अथवा विद्यमान भी रहें और किसी सनातनधर्मी मनुष्य ने पूर्ण आशा की कि मेरे कई सुपुत्र हैं उन के किये श्राद्ध द्वारा मुझे अवश्य सद्गति प्राप्त होगी परन्तु उन पुत्रोंमें से कोई नमाज़ी समाजी कोई जैनी वा ईसाई आदि श्राद्धका खण्डन करने वाला विरोधी पतित नास्तिक हो गया तो ऐसे पुत्रों से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता । अभिप्राय यह है कि अनुपस्थित भाविनी आशा पर विश्वास नहीं करना चाहिये । और द्वितीय यह भी है कि यदि पुत्रादि लोग जन्मान्तर में पिता का उद्धार श्राद्धादि द्वारा करें और उस ने स्वयं भी पहिले से धर्म का सञ्चय किया हो तो उसके लिये सुवर्ण में भी सुगन्ध वा एक से एक ग्यारह होगा अर्थात् उसकी सद्गति उन लोगों से अधिक उत्तम होगी कि जिन्हों ने स्वयं धर्मका संचय नहीं किया केवल पुत्रों के श्राद्धादि से ही जिनकी सद्गति होनी है । इससे यह भी सिद्ध होजाता है कि स्वर्गादि में अनेक कक्षायें हैं, ब्रह्माजी से लेकर स्थावर पर्यन्त एक प्रकार की सीढ़ी लगी हैं । संसार में मध्यम कोटि के साधारण म-

नुष्य अधिक होते हैं। तथा प्रबल पुण्यात्मा तपस्वी सहस्रों वा लाखों में कोई २ सदा से ही होते हैं उन साधारण आस्तिक सनातन धर्मियों की जन्मान्तर में श्रेष्ठ गति होने का उपाय पुत्र से भिन्न अन्य नहीं है ॥

नापुत्रस्यलोकोऽस्तीति तत्सर्वेपशवोविदुः ।
तस्मात्तु पुत्रोमातरं स्वसारंचाधिरोहति ॥१०॥

जब दैवी नियम से पशुओं को भी ज्ञात हुआ कि पुत्र हुए बिना प्राणी की अच्छी गति वा स्वर्ग अथवा अनुपम सुख प्राप्त नहीं हो सकता तबसे इसी कारण पशु अपनी माता वा भगिनी से भी संयोग कर २ के पुत्रों को उत्पन्न करने लगे। पशुओं के लिये धर्मशास्त्र नहीं है इसीसे मातृगमनादिका पाप उनको नहीं लगता क्योंकि वे भोगयोनियां हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि अबभी वृषभादि पशु पुत्र द्वारा स्वर्ग होने के उद्देश को मानते जानते हुए मातृ गमनादि करते हैं किन्तु अभिप्राय यह है कि जब ब्रह्माण्ड भर में पहिले २ दैव की ओर से यह डुग्गी पिटी थी कि श्राद्धादि कर्म के द्वारा पुत्रादि ही सर्व साधारण को स्वर्गमें पहुंचा सकते हैं बिना पुत्र के स्वर्ग नहीं होता तब पशुओं ने भी सुना और तभी से उनकी पत्नी नियत न होने से मातृगमनादि द्वारा भी उनमें भी पुत्रोत्पादन की प्रथा प्रचलित हुई ॥ १० ॥

एष पन्थाउरुगायः सुशेवो यं पुत्रिणआक्रमन्ते विशोकाः । तं पश्यन्ति पशवो वयांसि च तस्मात्ते मात्रापि मिथुनी भवन्ति ॥ ११ ॥

यह मार्ग बहुत प्रशंसा के योग्य उत्तम सुख युक्त है कि जिसके द्वारा शोक मोहादि रहित हुए पुत्रों वाले लोग स्वर्गको प्राप्त हो जाते हैं उस मार्ग को पशु पक्षी भी सूक्ष्म रूपसे जानते हैं इसी से वे माता के साथ भी संयोग करते हैं ॥ ११ ॥

धर्मशास्त्रादि सब विशेष कर मनुष्यों के लिये हैं इसी कारण अगम्यागमन का पाप पश्वादिको नहीं लगता इससे मातृगमन वि·

पयक कथन सिद्धानुवादपरक है किन्तु विधि वाक्य नहीं है। श्रुति का अभिप्राय यह भी नहीं है कि पुत्रों द्वारा पश्वादि को भी स्वर्ग प्राप्त होता है किन्तु श्रुतिका विवक्षितांश इतना ही है कि पुत्रोत्पत्ति द्वारा प्राणिमात्र का बहुत प्रकार से कल्याण होता है यह बात सर्वत्र व्यापक है इससे पश्वादि में भी इसका गन्ध पहुंच गया और वे भी पुत्रोत्पत्ति के लिये सर्व प्रकारसे विना रोक टोक तत्पर हो गये। इससे यह आया कि गृहाश्रम का मुख्य फल पुत्रों का होना ही है यदि यह फल न हो तो गृहस्थ होना व्यर्थ सा है। सन्तानोत्पत्ति होने की दशामें अनेक प्रकारोंसे जो २ सुखादि फल मिलते हैं वे निःसन्तान रहने की दशामें नहीं मिल सकते इसी कारण वन्ध्या गौ भैंस आदि की वैसी प्रतिष्ठा नहीं होती। स्त्री पुरुष के संयोग से जन्य काम सुखका सूक्ष्म मूल वेदने पुत्रको ही माना है इसी लिये पुत्रैषणा के अन्तर्गत काम सुखको वेदने मान लिया है क्योंकि पुत्र अपना ही स्वरूप होने से अन्तरंग है और उसकी अपेक्षा पत्नी बहिरङ्ग है इसीसे पिताका पूरा २ दायभागी पुत्र बन जाता है॥

आशा है कि पाठकगण उक्त ११ श्रुतियों का अभिप्राय ठीक २ समझ गये होंगे जिनसे समाजियों के दोनों प्रश्नोंका पूरा उत्तर हो जाता है। समाजीका यह कथन कि "उनकी भूख मिटाने के लिये परमेश्वर के घरमें कोई प्रवन्ध नहीं है क्या,, ? कैसा वेसमझी का लेख है। क्या अब निराकार ईश्वर का घर भी समाजी लोग मानने लगे। जब समाजियोंका मत है कि परमेश्वर सब प्राणियोंको उन २ के कर्मानुसार ही सुख दुःख के भोग देता है तब समाजी ने इस मन्तव्य से विरुद्ध उक्त लेख क्यों लिखा ?। यह बात उन समाजी महाशय से पूछनी चाहिये॥

द्वितीय प्रश्नमें जो शुकदेव भीष्मादिका सन्तान हीन होना लिखा है उसका भी समाधान ११ श्रुतियों के व्याख्यान में आचुका कि शुकादि कोई सामान्य कोटि के मनुष्य नहीं थे किन्तु वे लोग सिद्ध कोटिके प्रवल तपस्वी थे, जीवन्मुक्त थे, उनको स्वर्गादि प्राप्ति होना तो छोटी बात है किन्तु वे लोग साक्षात् मुक्त होगये॥

प्रश्न १३-भूख लगना यह शरीर का धर्म है, शरीर त्यागने पर शरीर रहित जीवको भूख प्यास लगती है यह किसी युक्तिसे सिद्ध नहीं। इसीलिये शरीर रहित जीव को शरीरोपयोगी पदार्थों की कोई जरूरत नहीं रहती फिर उसके नाम पर दिये हुए अन्न, जल, वस्त्र, भूषण, छड़ी, छाता, पलंग, बिछाई, जूता, बूट, टोपी, कोट, डण्डी, मुर्की, कुण्डल, कण्ठा, हाथी, घोड़े, भैंस, किसलिये? और अगर यह कि बाड़ियों का बाजार भरना है तो क्या इसे बन्द करना बुद्धिमानों का काम नहीं। और अगर इसमें कुछ बुद्धिमत्ता वा शुभ फल है, तो वह कौनसा है और कैसे? ॥

उत्तर १३-इस प्रश्न में भी समाजी का प्रबल अज्ञान ही कारण है क्योंकि यह थोड़ा अज्ञान नहीं है कि जो इस स्थूल शरीरको छोड़के मिलने वाली दिव्य योनियों में वा नारकी योनियों में शरीर ही नहीं समझना जब कि वे एक प्रकारकी भोग योनि होना सैकड़ों युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है तो बिना शरीर के पित्रादि योनि में भोग हो नहीं सकता फिर उस श्राद्धीय अन्न जलादि से होने वाले सुख और तृप्ति आदि भोग भी पितरों को अवश्य होते हैं। अरे भाई भोले भाले समाजी? तुम कुछ तो हृदय के विचार चक्षुओं से सोचा विचारा करो, देखो प्रत्यक्ष भी इस स्थूल शरीर की अपेक्षा को सर्वथा छोड़कर प्रतिदिन तुम को सुख दुःख होते हैं। जब तुम स्वप्न के समय कहीं देशान्तर में पहुंच कर जिन सुख दुःखों का अनुभव करते हो तब तुम्हारा स्थूल शरीर तो लाहौर में पड़ा होता है परन्तु केवल सूक्ष्म शरीर से सुख दुःख भोगते हो स्थूल शरीर हमारा है वा नहीं और है तो कहां पड़ा है इस की कुछ भी खबर नहीं होती जैसे यहां सूक्ष्म शरीर से सुख दुःख भोग होते हैं वैसे ही अन्य भी योनियों के सूक्ष्म शरीर में नाना प्रकारके भोग होते हैं। जैसे अतिसूक्ष्म शरीरों वाले अर्थात् परमाणु पर्यन्त सूक्ष्म शरीरों वाले जीव यहां भूमि पर भी कुछ न कुछ खाते पीते हैं वैसे ही पितर आदि सभी योनियों में कुछ खाने पीने का व्यवहार है पर वह योनियोंकी योग्यतानुसार भिन्न २ प्रकार का है। अन्न जलादि का सूक्ष्म अ-

मृतरूप सारांश पितृ आदि दिव्य योनियों का भोग है। इससे सिद्ध हुआ कि देव पितरों की योनि शरीर रहित नहीं किन्तु उन के पांच महाभूतों के शरीर न हो कर दिव्य शरीर होते हैं उन्हीं के लिये गोतम न्याय के वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि——

आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि।

वे अपञ्चीकृत एक २ तत्त्व से बने शरीर इन मानुषी चक्षुओं से समक्ष होने पर भी नहीं दीखते, किन्तु योगाभ्यासादि द्वारा चक्षुमें दिव्य शक्ति आ जाने पर दीख सकते हैं। भूषणादि बहुत से पदार्थ गिना देने से समाजी के मन में ब्राह्मणोंको अदृष्टार्थ दिये जाने वाले दान से ईर्ष्या द्वेष प्रकट होता है। कल्पना करो कि वैसे ही देय पदार्थ कोई श्रद्धालु पुरुष किसी प्रश्नकर्त्ता जैसे समाजी को बड़ी श्रद्धा भक्ति से समर्पण करे तो हे समाजी! सत्य कहना कि तुम सन्तुष्ट होगे वा नहीं? यदि नहीं कहो तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है हम सन्तुष्ट होना प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं और यदि हां कहो तो इसी सन्तोष से तुम्हारे इस १३ वें प्रश्न का खण्डन हो गया। क्योंकि दान और परोपकार एक ही है उस दान से जो अन्य को उपकार द्वारा सुख पहुंचाया जाता है उस का अदृष्ट प्रतिफल उद्देशानुसार होता है इसी से अन्न जल भूषणादि से किये उपकार का उद्देशानुसार उन २ पितृगणों को उत्तम फल लोकान्तरस्थ वा देशान्तरस्थ उन २ योनियों में प्राप्त होता है। अब इस पर विशेष लिखना व्यर्थ है। वेदादि शास्त्र प्रतिपादित मृत पितरों की सद्गति के उद्देश से होने वाले और्ध्वदेहिक पितृयज्ञ को आस्तिक ब्राह्मणादि लोग वेदादि शास्त्र प्रमाण के आधार पर करते हैं उस वेदादि शास्त्र का खण्डन करते हुए ये समाजी मन माने कुतर्कों से उड़ाके सबको नास्तिक बनाना चाहते हैं॥

प्रश्न १४—गया में जाकर एकबार श्राद्ध करने से पितरों की अक्षय काल तक तृप्ति होती है तथा गया के पण्डों के मुख से यह निकलने पर कि "तेरे पितर सरग भयो,, पितरोंको अगर स्वर्ग के दर-

वाजे सदा के लिये खुल जाते हैं यह मानना पोपों के वचनों पर वि-श्वास करनेके समान नहीं क्या ? गया वाले पण्डों को अगर इतना सामर्थ्य है तो वे अपने पितरों के हरसाल श्राद्ध क्यों कराते हैं और उन में इतने पाप अत्याचार क्यों हैं ॥

[यह उक्त प्रश्न तो लाहौर वाले पुस्तक में लिखा है इसी अंश में इटावा वाले पु० में छठा प्रश्न निम्न लिखित है]

प्रश्न ६-जो मनुष्य गयानगर में अपने पुरुषों का श्राद्ध करआता है उस के पुरुषों का फिर श्राद्ध नहीं होना चाहिये परन्तु क्यों होता है ? और गया निवासी ही क्यों करते हैं ? ॥

उत्तर १४। ६—अक्षय काल तक तृप्ति होने का अभिप्राय हम लिख चुके हैं कि जिस उपकार को उपकृत न भूले वही अक्षय है किसी का भी धर्मानुकूल उपकार करने का अवधि वा भार नहीं है कि इतना ही पर्याप्त है आगे आवश्यकता नहीं किन्तु उपकार वा धर्म जितना २ अधिक २ किया जाय उतना ही अच्छा माना जाता है वैसे श्राद्धादि से अपने पूज्य पितरों का जितना उपकार हो सके करते ही जाना चाहिये। इसी सिद्धान्त को समाजी लोग भी मानते हैं कि डी० ए० वी० कालिज लाहौर आदि अड्डों में लाखों रु० जमा हो जाने पर भी जिस के सूद्मात्र से दयानन्दी अध्येत्रध्यापकों को अक्षय काल तक तृप्ति हो सकने पर भी प्रतिवर्ष नया चन्दा करते ही जाते हैं और अवधि नहीं करते कि इतने के बाद कुछ न करेंगे। वैसे ही पितरों का गया श्राद्ध हो जाने से अक्षय तृप्ति हो जाने पर भी श्राद्ध करने की सदा आवश्यकता बनी ही रहती है। गया श्राद्ध कर आने पर पितरों का श्राद्ध फिर क्यों नहीं करना चाहिये ? करने में क्या दोष लगेगा ? यह समाजी को सिद्ध करना चाहिये था वा कोई ऐसा प्रमाण देना था जिस को सब कोई मान लेता क्या विना युक्ति प्रमाण के समाजी के कहने मात्र से कोई मान सकता है कि गया श्राद्ध के पश्चात् श्राद्ध न करे। यह वैसा ही

कथन है कि किसी बड़े यज्ञादि धर्मोत्सव को करके फिर नित्य २ होने वाला पञ्चमहायज्ञादि होम वा सन्ध्यादि धर्म करना छोड़दे ॥

एक वार समाजी किसी मुकद्दमे को लेकर कचहरी में गया, वहांका चीफरीडर मांस मद्य खाने पीने वाला वेश्याप्रेमी था परन्तु वह ऐसा होशियार वा चतुर भी था कि हाकिम लोग उस की बात पर विश्वास करते थे इस से वह जैसा चतुराई से समझा देता वैसा ही हाकिम करते थे। जब समाजी को ज्ञात हुआ कि इस पेशकार में अनेक पाप दोष अत्याचार हैं इस बात को जानकर समाजी ने जब कुछ कहा तो अर्दली के चपरासी द्वारा समाजी अदालत से निकाल दिया गया। तब एक बुद्धिमान ने समझाया कि पेशकार में पाप दोष अत्याचार हैं उन का फल ईश्वरीय व्यवस्था से वह स्वयं भोगेगा पर तुम अपना काम निकालना चाहते हो तो पेशकार की भेंट पूजा करो। तब समाजी बोला कि देखो हम गयादि के पण्डों में पाप दोष देखते हुए श्राद्ध का भी खण्डन कर डालते हैं तब पेशकार के दोष क्यों नहीं कहेंगे? तब वह बुद्धिमान् बोला कि जैसे गया वालों में दोषदर्शी होकर श्राद्ध का खण्डन करने से तुम्हारे पितर अधोगति में गये जिस का पाप तो तुम को लगाही था वैसे पेशकार वा वकीलादि कचहरी के लोगों के दोष देखने कहनेसे तुम्हारा मुकद्दमा भी विगड़ा। क्या पाप दोष देखने कहने का ही तुम लोगों ने ठेका लिया है? वा किसी के अच्छे गुण भी कभी कहते मानते हो ॥

शोचने की बात है।कि गया वाले श्राद्ध क्यों करते हैं? भला यह प्रश्न है? एक छोटा काम करने वाला मल्लाह जिस नौका से अन्यों को पार करता है उसीसे स्वयं भी अगाध जलके पार जाता है जो वैद्य वा डाक्टर सबको दवा करता है वह अपनी भी दवा करता है वैसे ही गयाके पण्डा अन्यके लिये कराये श्राद्धादि कर्मानुसार स्वर्गमें पहुंचनेके अर्थ स्वयंभी श्राद्ध करते हैं तो दोषही क्या है?

प्रश्न १५—एक वर्षके ३६५ दिनोंमें से केवल १६ दिन [आश्विन कृष्णपक्ष] श्राद्धों के लिये रक्खे हैं उनमें से एक दिन वल्कि एक

चक्र एकके पितरोंके लिये होता है उस दिन के किये भोजनसे साल भर तृप्ति होती है या क्या ? और जिस अन्न से ब्राह्मणों को ६ । ७; घंटे के बाद भूख लग जाती है उस अन्न के असर से पितरोंको वर्ष भर तृप्ति कैसे होती है ? ॥ (इटावा वाले पुस्तक में सातवां प्रश्न ऐसा ही है)

प्रश्न ७-३६० दिन में से १५ दिन पितरों के श्राद्ध तर्पण करने का क्यों नियम बांधा कि सब हिन्दुओं के एक दम श्राद्ध करने से सुपात्र ब्राह्मण और आवश्यक पदार्थों का मिलना कठिन हो जाता है। और एक ही दिन के पिण्डों से वर्ष भर की तृप्ति कैसे हो जाती है ? क्या ३५६ दिन पितर कहीं विलायत दौड़ा करने चले जाते या उपासे रहते हैं ? ।

उत्तर १५ । ७-क्या समाजी मन में सभी बेसमझ हैं वा कोई कुछ बुद्धि भी रखता है ? । अबतक सैकड़ों नहीं किन्तु सहस्रों लाखों समाजियों ने इन प्रश्नों को देखा बांचा होगा पर किसी ने क्या कभी शोचा समझा कि ग्रन्थों के प्रमाण से तथा लोकसिद्ध रीतियों से श्राद्ध काल कौन २ माना जाता है ? । यदि कोई भी शोचता तो ये लोग अबतक १५ वा १६ ही दिन क्यों छपाते जाते। अस्तु जो हो श्राद्धों के अनेक काल शास्त्रों में और लोक व्यवहार में भी प्रसिद्ध हैं। जिस को वेदमें पिण्डपितृयज्ञ कहा है वही स्मार्त्त प्रक्रिया में पार्वण श्राद्ध कहाता है यह प्रतिमास की अमावास्या के दिन होता है पितृलोक में निवास करने वाले पितृयोनिस्थ पितरों का दिन हमारे मानुषी १५ दिन का होता है और १५ दिनकी रात्रि होती है मनु जी ने भी कहा है कि-अ०

> पित्र्येरात्र्यहनीमासः प्रविभागस्तुपक्षयोः ।
> कर्मचेष्टास्वहःकृष्णः शुक्लःस्वप्नायशर्वरी ॥

अर्थ-पितरों का दिन रात हमारे एक मास का होता है उस में कर्म चेष्टा के लिये कृष्णपक्ष पितरों का दिन और हमारा शुक्ल पक्ष पितरों की रात्रि शयन करने के लिये इसी कारण शुक्लपक्ष में प्रायः

श्राद्ध का विधान नहीं किया। प्रत्येक अमावास्या को किया पिण्ड पितृयज्ञ वा पार्वणश्राद्ध पितरों को प्रतिदिन भोजन देने वाला सिद्ध होजाता है महीने भर का पितरोंका दिन रात समाजियों ने भी मान लिया है मनु० अ० ३। २७६ में १०। ११। १२। १३। ३०। दशमी से अमावास्या तक ये कृष्णपक्ष की पांच तिथि श्राद्ध के लिये उत्तम काल बताया है इससे प्रतिमास पांच दिन श्राद्ध करने का विधान सिद्ध है। अष्टका और अन्वष्टका चार दिन के श्राद्ध प्रति वर्ष भिन्न हैं। ये सब थोड़े नहीं हैं किन्तु एक दिन में एकवार से भी अधिक श्राद्ध पितरों का होजाता है॥

नित्य श्राद्ध इससे भिन्न है जिसके लिये मनु आदि स्मृतियों में अनेक प्रमाण हैं-मनु० अ० ३। श्लो० ८२। ८३।

कुर्यादहरहःश्राद्ध-मन्नाद्येनोदकेनवा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यःप्रीतिमावहन्॥
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थेपाञ्चयज्ञिके॥

अर्थ-अपने भोज्य अन्न से वा फल, मूल, दूध आदि से मृत पितरों को सन्तुष्ट प्रसन्न करने के लिये नित्यश्राद्ध करना चाहिये। श्रुति में लिखा है कि-

अहरहःस्वधा कुर्यात्, आउदकात्तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति॥

अर्थ-प्रतिदिन "पितृभ्यःस्वधानमः" ऐसा कहकर भोज्याश्नादि समर्पण करै। यदि कुछ भी पदार्थ प्राप्त न हो तो केवल जल हाथ में लेकर अपसव्य होके दक्षिणाभिमुख हो उक्त मन्त्र से जल छोड़ देवे तब इतने से भी नित्य के पञ्चमहायज्ञों में कहा पितृयज्ञ समाप्त हो जाता है।

स्वा० दयानन्द जी ने भी पञ्चमहायज्ञविधि और संस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण में पांच महायज्ञों का विचार लिखते हुए और स्त्री पुत्र भृत्यादि सहित इन्द्रादि देवों को भोजनांश एक २ ग्रास दिलाते हुए लिखा है कि "पितृभ्यः स्वधा नमः" इस से दक्षिण में

(एक ग्रास भर) अब आशा है कि पाठक लोग समझ गये होंगे कि जो शतपथ श्रुति में नित्यश्राद्ध कहा वही मनुजी ने बताया उसी के अनुसार स्वा० दयानन्द जी ने नित्य श्राद्ध बताया वैसा ही सब सनातनधर्मी भी मानते हैं। अब ध्यान दीजिये कि एक वर्ष में प्रति दिनके ३६० नित्यश्राद्ध, ८ अष्टका अन्वष्टका दर्शनोंमें अमावास्या तक, एक चतुर्दशी को छोड़ के प्रतिमास पांच दिन के हिसाब से ११ महीने के ५५ दिन और आश्विन मास के १६ दिन, ये सब एक वर्ष नाम पितरों के १२ दिन रातों में ३५ बार श्राद्ध का विधान कम से कम है। नैमित्तिक श्राद्धों के काल इन से अधिक भी हैं इस प्रकार ४३५ में १२ का भाग देने से पितरों के प्रत्येक दिन में ३६ से कुछ अधिक श्राद्धों का औसत पड़ता है और मानुषी ३० दिन में ३६ से अधिक श्राद्ध हुए तो प्रतिदिन एक से अधिक पड़ा ऐसी दशा में समाजियोंसे पूछना चाहिये कि आश्विन मास के १५ वा १६ दिन श्राद्ध के कौन मानता वा कहता है? यदि कोई नहीं मानता तो तुम्हारा आक्षेप आकाश को घूंसों से पीटने के तुल्य मिथ्या वा निष्फल क्यों नहीं है?॥

लाहौर वाले समाजी ने यह भी लिखा है कि "उनमें से एक दिन बल्कि एक वक्त एक के पितरों के लिये होता है" इस लिखने से समाजी का अभिप्राय यह है कि जिस तिथि को जिस पितादि के नाम से कनागतों के श्राद्ध होते हैं उस तिथि को केवल एक बार वर्ष भर में उस पितादि को भोजन मिलता है पर यह समाजी का बड़ा अज्ञान इस लिये है कि श्राद्धों की व्यवस्था को यह लोग कुछ भी नहीं जानते। यह बात एकोद्दिष्ट श्राद्धों में तो घट सकती है कि जहां उसी एक मृतक के उद्देश से एक ही पिण्ड दिया जाता है परन्तु कनागतों के श्राद्ध एकोद्दिष्ट नहीं किन्तु पार्वण विधि से होते हैं उनमें जिन२ का सपिण्डीकरण हो चुकता है वे सभी प्रत्येक श्राद्ध में लिये जाते हैं। पिता, पितामह, प्रपितामह ये तीन कोटि हैं तीन व्यक्ति नहीं हैं तीनों ही कोटि के सामान्यतया पितर कहाते हैं इससे प्रत्येक तिथि के श्राद्ध में सभी का पूजन वा सत्कार किया जाता है॥

द्वितीय यह भी ध्यान रखने योग्य है कि जब पितृयोनि वासनामात्र के ग्रहण से तृप्त होती है और कोई भी नहीं मानता कि ब्राह्मणोंको कराया भोजन वा भूमि पर किया स्थूल पिण्डदान साक्षात् पितर खा जाते हैं तब पितरों की स्थूल शरीरवत् तृप्ति का प्रश्न करना समाजी की यहां वे समझी क्यों नहीं है ? । इससे वासनारूप सूक्ष्म तृप्ति बहुत काल के लिये भी हो सकती है । इटावा वाले समाजी का प्रश्न है कि "सब हिन्दुओं के एक दम श्राद्ध करने से सुपात्र ब्राह्मण और आवश्यक पदार्थों का मिलना कठिन हो जाता है इससे एक ही समय नियत करना ठीक नहीं है" संक्षेप से इसका समाधान यह है कि—दर्शपौर्णमासादि वेदोक्त यज्ञों को किसी न किसी प्रकार गिरी पड़ी दशामें समाजी भी मानते हैं तब समाजियां से पूछना चाहिये कि यदि भारतवर्षके सब द्विजोंके घर २ में प्रत्येक अमावस्या वा पौर्णमासी को दर्शपौर्णमास याग जब होते थे वा आगे हों तो उसको कराने वाले योग्य ब्राह्मण मिलने आदि का कष्ट वैसा ही क्यों नहीं होगा । और क्या तब यही तुम्हारा प्रश्न वेद पर नहीं होगा कि वेदमें एकही दिन सबको यज्ञ करना क्यों बताया और यदि भिन्न २ तिथियों में दर्श पौर्णमासादि बनाये जाते तो अमावस्या पौर्णमासी से अन्य तिथियों में हो सकते पर उन यज्ञोंका नाम दर्शपौर्णमास नहीं हो सकता । जैसे अंग्रेज़ों का बड़ा-दिन एक ही दिन में सब को मानने पड़ता है क्योंकि बड़े दिन कई हो नहीं सकते इसके अनुसार समाजियोंका भी कोई सार्वजनिक उत्सव एक दिन हो सकता है । कल्पना करो कि भारतवर्ष में कभी सब का एक ही मत हो जाय और सब देशहितैषियों की एकानुमति से वर्ष भर में किसी एकही समय कोई सर्व हित साधक उत्सव माना जाय तो क्या यही प्रश्न वहां न होगा ? । द्वितीय यह भी ध्यान देने की बात है कि—

ततःशेषाद्धिकन्याया यान्यहानितुषोडश ।
क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥

अर्थ—सिद्धान्तशिरोमणि नामक ज्योतिष के ऋषि प्रणीत समाजियों के भी मान्य ग्रन्थ में लिखा है कि कन्या राशि के शेष सोलह दिन (भाद्रपद की पौर्णमासी से आश्विन कृष्ण अमावास्या तक) यज्ञों के तुल्य पुण्य करने के सोलह दिन हैं उन सोलह दिनों में विशेष कर पितरोंके लिये दिया पिण्डदानरूप श्राद्ध अक्षय फल वाला होता है। यहां सिद्धान्त शिरोमणि के निर्माता महर्षियों से समाजियों को कहना था कि कन्यागत सूर्यमें ही १६ दिन के श्राद्ध का विशेष पुण्य तुम क्यों बताते हो? तथा (श्राद्धे शरदः) शरद् ऋतु के कन्यागत श्राद्धों की विशेषता दिखाने वाले अष्टाध्यायी व्याकरण के निर्माता पाणिनि जीसे कहना था, तब ये समाजी क्या विलायत को बारिस्टरी पास करने चले गये थे? "एक दिन के पिण्डों से वर्ष भर की तृप्ति कैसे हो जाती है,, इस का जवाब पहिले दिया जा चुका है कि भारतवर्षमें जब सन् १८५७ ई० में गदर हो गया था तब जिस २ मनुष्य ने एक दिन एक समय भी किसी अंग्रेज की रक्षा की थी उस पर सदा के लिये अंग्रेज सन्तुष्ट वा तृप्त हो गये उन लोगों को दो रियासतें पीढ़ी दर पीढ़ी उन २ के सन्तान भोग रहे हैं कि जिन सन्तानों ने अंग्रेजों का कुछ भी उपकार नहीं किया था। तृप्ति सन्तोष प्रसन्नता ये सब एकार्थ शब्द हैं। संसार में ऐसे अनेक काम हैं जिन से सिद्ध है कि एक दिन के थोड़े से काम से सदा के लिये प्रसन्नता हो जाती है। वैसे ही किसी २ खास २ समय वा स्थानके श्राद्ध भी ऐसे हैं जिन से पितरों की अक्षय तृप्ति वा प्रसन्नता होती है। जैसे प्रसन्न तृप्त हो जाने वाले राजादि को अधिक २ प्रसन्न करनेकी आवश्यकता बनी रहती है क्योंकि तृप्ति वा प्रसन्नता की मोक्ष प्राप्ति से पहिले कोई सीमा नहीं है वैसे ही पितरोंकी अक्षय तृप्ति हो जाने पर भी आगे २ श्राद्ध द्वारा पितरों को और भी तृप्त करने की आवश्यकता मोक्ष पर्यन्त बनी रहती है॥

प्रश्न १६-देहधारी जीवों की तृप्ति तो पिण्डों से हो सकती है पर देह हीन आत्माकी स्थूल पिण्डों से तृप्ति कैसे होती है?। (इ-

टावा वाले पु० में ८ वां प्रश्न) पितर लोग कौन से शरीरसे पिण्ड ग्रहण करते हैं ?। यदि स्थूल शरीरसे तो दीखते क्यों नहीं ? और सूक्ष्म शरीर से तो स्थूल भोजन को वे कैसे ग्रहण कर सकते हैं ?।

उ०-१६ । ८ यहां यद्यपि दोनों के प्रश्नों में भेद दीखता है तो भी दोनों का अभिप्राय एक है। इस में लाहौर वाले समाजी का प्रश्न अधिक बेसमझी का है तदपेक्षा इटावा वाले समाजीका कुछ समझ पूर्वक है। देहधारी जीवों की तृप्ति पिण्डों से हो सकने का नियम नहीं है। क्योंकि यदि किसी समाजी को अत्यन्त प्यास लगी हो और उस समय उस को पिण्डमात्र खिलाये जावें और जल न दिया जाय तो क्या समाजी तृप्त हो जायगा ? अर्थात् कदापि नहीं। जिस रोगी को अन्न से अरुचि हो गयी हो उस को भी पिण्ड [पेड़ा] से तृप्ति नहीं होती, जिस का हृदय धनादि प्राप्ति की तृष्णाग्नि से दग्ध हो रहा है उस की पिण्डादि के खानेसे तृप्ति नहीं होती। इसी प्रकार अनेक अवसरों में देहधारी जीवों की भी पिण्डादि से तृप्ति नहीं होती और अनेक अवसरों में स्थूल देहधारियों की सूक्ष्मांशों से वा कल्पना मात्र से भी तृप्ति होती दीखती है। जैसे जाग्रत् का तृष्णा की स्वप्न में कल्पना मात्र प्राप्ति से भी शान्ति हो जाती है वा जैसे दुर्गन्धादि से घबराया सुगन्धादि प्राप्ति से तृप्त हो जाता है, गर्मी से घबराया शीतल वायु से तृप्त होता इत्यादि। समाजी को बुद्धि वा होश नहीं है, स्थूल शरीर से निकलने पर भी शरीर से रहित आत्मा नहीं होता क्योंकि शरीर त्रिविध है, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, स्थूल से निकलने पर सूक्ष्म कारण दो प्रकारका शरीर बना रहता है। सूक्ष्म शरीरका लक्षण यह है कि

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च, प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानिपञ्च । बुद्ध्याद्यविद्यापिचकामकर्मणी, पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ १ ॥

विवेकचूडामणौ ।

अर्थ-वागादि पांच कर्मेन्द्रिय, श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण, शब्दादि पांच तन्मात्र सूक्ष्म भूत बुद्धि आदि अन्तःकरण

चतुष्टय, अविद्या, कामना, कर्म, ये आठों पुर्यष्टक सूक्ष्म शरीर क० हाते हैं इसी सूक्ष्म शरीर का (कि जो इन चक्षुओं से नहीं दीखता) इस शरीर से मरण समय निकलना होता है यही स्वर्ग नरकादि में जाया आया करता है वाणी आदि शक्ति स्वरूप से सूक्ष्म शरीर में सब रहते हैं।

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था—विवेकचूड़ामणौ।

सोते समय स्थूल शरीर की अपेक्षा को छोड़के सूक्ष्म शरीर से ही सर्वविध स्वप्न दीखते हैं। देव पितृ योनियों के शरीर भी ऐसे ही सूक्ष्म होते हैं जो दीखते नहीं हैं इसी लिये शतपथ श्रुति में लिखा है कि—

तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरइवैतद्भवति॥

अर्थ—श्राद्ध में आने वाले पितर मनुष्यों से छिपे से होते हैं इसीलिये पिण्डों का भोजन भी उन का अदृष्ट सूक्ष्म ही होता है। वेदमन्त्र में भी लिखा है कि—

असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः। अथर्व० सं०॥

असु नाम सूक्ष्म प्राणमात्र स्वरूप को प्राप्त हुए पितर श्राद्धादि में हमारी रक्षा करें, इसी अभिप्राय को मनुजी ने भी अ० ३ में (वायुवच्चानुगच्छन्ति) से कहा है। जैसे भ्रमर वा मधुमक्षिका पुष्प का सूक्ष्मांश लेलेती है वैसे ही पितर लोग भी सूक्ष्म शरीर से पिण्डादि का सार मात्र ग्रहण करके तृप्त होते हैं। लाहौर वाले समाजी से पूछना चाहिये कि भोजनादि से आत्मा तृप्त होता है वा शरीर? अर्थात् तृप्त वा प्रसन्न संतुष्ट होना धर्म किसका है? स्थूल शरीर वास्तव में जड़ है। अधिक सोच विचार करने पर समाजी को भी अवश्य मानना पड़ेगा कि इस स्थूल शरीर की अधिष्ठात्री चेतन शक्ति ही प्रसन्न संतुष्ट वा तृप्त हुआ करता है। तब रहा यह कि इन्द्रियों द्वारा ज्ञान कर आत्मा तृप्त होता है और स्थूल शरीर से भिन्न इन्द्रियों में दर्शनादि शक्ति होती ही नहीं तो इसका संक्षेप से समाधान यह है कि इसी लिये प्राण और इन्द्रिय शक्तियों

का संग्रह सूक्ष्म शरीरों में माना गया है वही सूक्ष्म शरीर जब दिव्य योनियों में प्रकट होता है तब वहां दिव्य तत्वों का प्रकृष्ट सत्त्वगुणी सूक्ष्म दिव्य शरीर बन जाता है, जिस में दिव्य दर्शनादि इन्द्रिय शक्तियां अभिव्यक्त हो जाती हैं वे ही देवों में वा पितरों में जन्म सिद्धियां कहाती हैं। उससे पितर लोग दिव्य इन्द्रिय शक्तियों के द्वारा पिण्डादि का सूक्ष्म सारांश भोगकर तृप्त वा प्रसन्न होते हैं यह सिद्ध होगया ॥

अब इन दोनों प्रश्नों का स्पष्ट समाधान होगया कि शरीर रहित केवल आत्मा मोक्षावस्था से पहिले कभी होता नहीं, मोक्षावस्था में श्राद्ध की आवश्यकता रहती नहीं, स्थूल शरीरसे पृथक् होने पर तथा दिव्य योनि प्राप्त होने पर सूक्ष्म कारण दोनों प्रकार का शरीर साथ रहता है। (सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्) कथन से यह भी सिद्ध होचुका है कि स्थूल शरीर के विद्यमान होते भी सूक्ष्म शरीर भोग का साधकतम कारक है और सूक्ष्म शरीर भोगाधिष्ठान है अर्थात् सूक्ष्म शरीर ही भोग कराता है वह सूक्ष्म शरीर दिव्य पितृयोनिस्थ पितरों को भोग कराता है उसी दिव्य सूक्ष्म शरीर से पितर लोग पिण्डादि के सूक्ष्म सारांश का भोग कर तृप्त वा प्रसन्न हो जाते हैं स्थूल भोजन का ग्रहण कोई मानता ही नहीं तब उस अंश में शंका करना समाजी की वे समझी है ॥

प्रश्न १८—एक मनुष्यके दश पुत्र हैं और वे दश नगरोंमें रहते हैं इन्हों ने दश ग्रामों में एक ही समय श्राद्ध किया तो एक पितर दश जगह पर एक ही समय किस तरह अन्न खाने जायगा ? तथा दश गुणा अन्न खाने से उसे कष्ट और अजीर्ण न हो जायगा ? और भूख न होने पर वा कम होने पर दश गुणा अन्न खानेसे जो अजीर्ण हो सकता है उसका इलाज ब्राह्मणोंको दवाई देकर क्या नहीं करना चाहिये ? [इटावा के प्रश्नों में नवम प्रश्न] (६) यदि एकही मनुष्य के चार पुत्र ४ नगरोंमें एक ही दिन एक ही समय में एक संग श्राद्ध करें तो क्या वह चारों पुत्रों का भोजन कर सकता है ? वा नहीं ? किन्तु शास्त्रोंके मत से जीव अल्पशक्तिवाला और एकदेशी है ॥

उत्तर १८ । ६ दोनों समाजियों ने दश और चार पुत्रों को लेकर एक ही प्रश्न किया है परन्तु सनातनधर्मियोंमें तो एक मनुष्यके पुत्रों का हद्द करना भी कठिन है। वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि सूर्य्यवंशी राजा सगर के ६०००० साठ हजार पुत्र थे जिनके कारण समुद्र का नाम सागर हुआ है। सौ २ पुत्र तो अनेकोंके लिखे हैं। इस दशा में येही दोनों प्रश्न हजारों पुत्रों पर ऐसे ही हो सकते हैं। अब समाधान देखिये हम पहिले भी लिख चुके हैं कि देवयोनियों के अन्तर्गत पितृयोनि एक प्रकार को देवयोनि है। मनु० अ० ३।१६ में लिखा है कि——

न्यस्तशस्त्रामहाभागाः पितरःपूर्वदेवताः ।

दयाद्यष्टगुणयोगो महाभागता तद्वन्तऽअनादि-देवतारूपाः पितरइति तद्भाष्यम् ।

भावार्थ—दयादि आठ गुणों से युक्त पितर देवोंसे भी प्रहिले देव हैं। इससे पितरों का देव योनि में उत्पन्न होना सिद्ध है।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥

योगदर्शन पा० १ । १६ ।

भा०—विदेह नाम पांच महाभूतोंके स्थूल शरीरोंसे रहित देवोंमें जन्म सिद्धिके द्वारा सब योगसिद्धियां स्वाभाविक हुआ करती हैं जैसे पक्षियों में उड़ने की स्वाभाविक सिद्धि जन्मसे होती है वैसे ही देव योनिमें अणिमादि योगसिद्धियां भी स्वभाव सिद्ध होती हैं। उन्हीं योगसिद्धियों में एक सिद्धि एक रूप के अनेक रूप कर लेना भी है जिसके लिये स्वा० दयानन्दके माने हुए और समाजियोंके भी विशेष कर मान्य न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्य अ० ३।२।१६में लिखा है कि

योगी खलु ऋद्धौ प्रादुर्भूतायां विकरणधर्मा निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि तेषु तेषु युगपज्ज्ञेयानुपलभते तच्चैतद्विभौ ज्ञातर्य्युपपद्यते नाणौ मनसीति ।

भा०—सिद्धियों के प्रगट होने पर योगी मनुष्य भी अपने एक शरीर के इन्द्रियों सहित अनेक शरीर बनाकर उन २ अनेक शरीरों में एक ही समय अनेक विषयों को प्राप्त होता है सो यह बात

जीवात्माके व्यापक अपरिच्छिन्न मानने पर घट सकती है। पाठक गण! आप लोग ध्यान दें कि ऊपर इटावा वाले प्रश्न में लिखा है कि "शास्त्रों के मत से जीव अल्पशक्ति वाला और एकदेशी है" तथा ऊपर वात्स्यायन भाष्य में चैतन्य शक्ति जीव का स्पष्ट ही विभु व्यापक सर्वदेशी लिखा है ऐसी दशामें पाठकोंको हम सम्मति देते हैं कि वे लोग मिलकर या पत्र द्वारा प्रश्नकर्त्ता से वा समाजी उपदेशकों से पूछें कि जीव को एकदेशी किस शास्त्र में लिखा है? उसका प्रमाण बताइये। और न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्य में चेतन शक्ति जीवको सर्वदेशी व्यापक लिखा है सो क्यों? इसका भी उत्तर दीजिये। योगसिद्धियोंके लिये महाभारत में भी यही लिखा है कि—

आत्मनोवैशरीराणि बहूनिभरतर्षभ !।
कुर्याद् योगीबलंप्राप्य तैश्चसर्वैर्महींचरेत् ॥

भा०—शान्तिपर्व मोक्ष धर्म में लिखा है कि योगी मनुष्य योगबल को प्राप्त होकर अपने एक शरीरके अनेक शरीर बनाकर पृथिवी पर स्वतन्त्र विचरता है। हे समाजी महाशय! अब तुम शोचो कि जब योगबल से मनुष्य में भी यह शक्ति होसकती है कि अपने अनेक रूप धारण करले तब स्वाभाविक योगसिद्धियों वाले देवयोनिस्थ पितरोंको क्या अपने अनेक पुत्रों के किये भिन्न २ देशों के श्राद्धों में एक ही दिन एक ही समय अनेक रूपों से श्राद्धांश के स्वीकारार्थ प्राप्त हो जाना कोई कठिन काम वा असम्भव कभी हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। चार और दश पुत्रों की बात ही क्या है किन्तु सहस्रों लाखों पुत्रों के भिन्न २ देशों में किये सभी श्राद्धों में पितर लोग एक ही समय अनेक रूप धारण करके अवश्य प्राप्त हो सकते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वास्तव में यह प्रश्न तो जीवितों का श्राद्ध मानने वाले समाजी मत में हो सकता है कि एक समाजी मनुष्य के दशपुत्र हैं उनमें से एक इङ्गलैण्डमें एक जर्मनमें एक फ्रांस में एक जापान में अन्य २ भाषा पढ़ने को गया, एक बुम्बई में दलाल एक कलकत्ता में दारोगा, एक लखनऊ में कोतवाल, एक लाहौर में मांसपार्टी का प्रचारक, एक हरिद्वार में घासपार्टी प्रचारक और

एक दिल्ली में चिल्ली पालता है और उन सबके माता पिता आगरे में अगर मगर से निर्वाह करते हैं अब ऐसी दशा में समाजियों से पूछना चाहिये कि जीवित श्राद्ध के समय आगरे वाले माता पिता का श्राद्ध वे दशों पुत्र प्रतिदिन कैसे करेंगे ? । अर्थात् उस जीवित पिताको वा माता को वे लोग भिन्न २ देशस्थ होकर भोजन कैसे करा सकते हैं ? । यदि नहीं करा सकते तो जीवित श्राद्ध को तिलाञ्जलि हो गयी वा नहीं ? । अभिप्राय यह है कि सनातनधर्मी मृतक श्राद्ध में तो समाधान ऊपर लिखे अनुसार ठीक शास्त्रानुकूल होगया परन्तु समाजी मत में उक्त प्रश्न का समाधान कोई समाजी नहीं कर सकता ॥

और यदि समाजियों के पिता मरकर किसी पशु पक्ष्यादि की योनि में गये हों क्योंकि मरने पर ठीक ठीक दशगात्रादि वा षोडश श्राद्धादि कर्म न होने पर पितृयोनि तो उनको प्राप्त हो नहीं सकती तथा पशु पक्ष्यादि में एक के अनेक शरीर कर लेने की शक्ति भी हो नहीं सकती । ऐसी दशामें किसी कारण पीछे कभी उस समाजीके कई पुत्र कई नगरों में एक ही दिन श्राद्ध करें भी तो उनके पिता सब पुत्रों का श्राद्ध ग्रहण नहीं कर सकते । अब रही यह बात कि कई नगरों में एक ही दिन एक ही समय दशपुत्रों के श्राद्ध में दश गुणा भोजन करने से अजीर्ण होजायगा तब औषध किसको दिया जाय ? इस का समाधान सनातन धर्म के सिद्धान्त में तो ऊपर के लेख से होगया कि जब पिताको दश पुत्रों के श्राद्ध में दशरूप धारण करने की शक्ति है तब वह दश शरीरों में एक २ गुणा ही भोजन करेगा तब भी अजीर्ण कदापि हो नहीं सकता परन्तु किसी आर्यसमाजी के चार पुत्र एक ही ग्राम वा नगर में अलग २ घरों में न्यारे होकर रहते हैं सबका अलग २ भोजन बनता है और भोजन के समय जीवित श्राद्ध करने के लिये चारों ने पिता माता को बुला २ कर एक ही दिन जबरदस्ती भोजन कराया क्योंकि जो न करावे उसीका श्राद्ध नष्ट हुआ जाता है तब विचारना चाहिये कि समाजी के पिता को विशूचिका रोग न हो जायगा ? ॥

प्रश्न १९-"यमेन वायुना" इस यजुर्वेद के मन्त्र अनुसार यम-संज्ञा वायु की वहां लिखी है, अगर यह ठीक मानते हो तो जो तुम यमलोक कहते हो वह यह लोक ही हुआ, और पितर इस हवा में रहते होंगे ऐसा ऊपर के मन्त्र से प्रतीत होता है इस लिये इस वायु मण्डल में घूमने वाले अशरीरी पितरों को अन्न वस्त्र वा छाते जूतेकी क्या जरूरत है ? । और इस वायुमण्डल में गरुड़ पुराण में लिखे अनुसार तेल भरे-गर्म कड़ाहेके आग से लाल किये खम्भे और असिपत्रादि भयानक नव वा रक्त पूयकी भरी वैतरणी नदी कहां है ? और अगर वायुमण्डलमें पिता रहते हैं तो हमारे पास आ जा सकते हैं या इस वक्त विमानों का प्रचार होनेके कारण हमको भी वहां जाना चाहिये ? इस लिये इस बात का जरूर निर्णय होना चाहिये कि क्या यमलोक यही वायुमण्डल है वा कोई और है ? ॥

उत्तर १९-लाहौर वाले समाजी ने अपना पुस्तक पूरा करने के लिये दो पङ्क्तियोंमें लिखने योग्य प्रश्नको व्यर्थ बढ़ाकर १५ पङ्क्तियों में लिखा है । तथापि हम संक्षेप से उत्तर लिख देते हैं--यम नाम वायुका नहीं है स्वा० दयानन्द की चालाकी है । परन्तु वायु को अन्तरिक्ष स्थान देवताओं में मुख्य माना है यम नाम भी अन्तरिक्ष स्थान एक देवका है एक स्थानी होने से पवन देवता के साथ यम का अधिक सम्बन्ध है । और यदि कहीं वेदादि में यम शब्द वायु का भी वाचक आजावे तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि यम देवता स्वतन्त्र कोई नहीं रहा । जैसे कि विस्तृत होने से अन्तरिक्ष का पृथिवी भी एक नाम है तब क्या इतने से अन्तरिक्ष से पृथक् प्रत्यक्ष पृथिवीको समाजी नहीं मानेंगे ? । अर्थात् जिस अन्तरिक्षका पृथिवी नाम कहीं होने पर भी अन्तरिक्ष से पृथक् समाजी को पृथिवी मानने पड़ती है वैसे वायु का कहीं यम नाम आजाने पर भी वेदादि के सहस्रों प्रमाणों से सिद्ध यमराज देवता को भी अवश्य मानना पड़ेगा अथर्ववेद काण्ड १८ अनु० २ मं० १२ में लिखा है कि—

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु॥

अर्थ-मनुष्यों के प्राण लेकर तृप्त होने वाले और बड़ी २ नाक वाले यमराज के दो दूत मनुष्यों के साथ २ या पीछे २ विचरते हैं यहां समाजी से पूछना चाहिये कि जिन यम के बड़ी बड़ी नाक वाले दो दूत मनुष्यों के पीछे २ चलते हैं वह यम क्या वायु है॥

बड़ी २ नासिका वाले वायु के दो दूत कौन और कहां हैं? यदि नहीं सिद्ध होते तो क्या वेद का लेख व्यर्थ है?। अथवा निराकार के दो दूत हैं तो कैसे हैं और भी देखो अथर्व० कां० १८ अनु० ३ मं० १३ यह है कि-

योममारप्रथमोमर्त्यानां यःप्रेयायप्रथमोलोकमेतम्।
वैवस्वतंसंगमनंजनानां यमंराजानंहविषा सपर्यत॥

अर्थ-सर्गारम्भ में उत्पन्न होने वाली सृष्टि के मनुष्यों में जो सब से पहिले मरता है और मरणानन्तर जो पहिले यमलोक में जाता है वही उस कल्पमें यमराज देवताके अधिकार को प्राप्त होता है? उसी यमराज देव की होम के द्वारा पूजा करो। यहां भी समाजी को बताना चाहिये कि यह अर्थ यमरूप वायु में कैसे घटेगा? या निराकार ईश्वर में कैसे घटेगा? अर्थात् कदापि घट नहीं सकता। और देखो अथर्वकां० १८। अनु०१ मन्त्र ६६ में कहा है कि-

यास्तेधानाअनुकिरामि तिलमिश्राःस्वधावतीः।
तास्तेसन्तुविभ्वीः प्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम्॥

हे मृत मनुष्य! तिल मिश्रित जिन धानाओंको स्वधा बोल कर मैं तुम को समर्पित करता हूं उन का यमराज अनुमोदन करें अर्थात् स्वीकारी की आज्ञा तुमको देवें यहां भी समाजीको बताना चाहिये कि यह यम कौन है? ऐसे सैकड़ों मन्त्र वेद में विद्यमान हैं जिन का अर्थ स्वतन्त्र यमराज देवता में घट सकता है। वैसे वायु तो त्रिलोकी में व्यापक है वायु पितृलोक में भी विद्यमान रहता है इस कारणसे पितृलोक पृथक् न माना जाय तब वायुमें तो हम सब रहते हैं वायु के बिना एक क्षण भी हम मनुष्यादि प्राणी जीवित नहीं रह सकते तब क्या वायु से भिन्न भूमिलोक और व्यवस्थापक मानुष राजादि को नहीं मानना चाहिये? ॥

और हम पहिले प्रश्नों के उत्तर में वेदके प्रमाण से साफ साफ पितृलोकका पता बता चुके हैं उनसे ठीक २ समाधान हो जाता है।

उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीतिमध्यमा ।
तृतीयाहप्रद्यौरिति यस्यांपितरआसते ॥

अर्थ—अथर्व कां० १८॥ अनु० २ मं० ४८ में कहा है कि पृथ्वी की ओरका आकाश मण्डल उदन्वती नाम जल वाला भाग कहाता है जिस में नील रूप से सूक्ष्म जल भरा हुआ है। उस से ऊपरका अन्तरिक्ष भाग पीलुमती नाम वाला है उससे भी ऊपर तीसरा आकाश मण्डल प्रद्यौ नाम उत्तम सात्त्विक भाग है उसी प्रद्यौ नामक भाग में पितृलोक है वहीं पितर लोग रहते हैं। दक्षिणा प्रवणो वै पितृ लोक इति श्रुतिः। 'पृथ्वीसे दक्षिणकी ओर झुका हुआ पितृलोक है यदि वायु में पितरों का निवास मानें तो वायु क्या उत्तर में नहीं है? तब दक्षिण में कहना नहीं बनता। पितृलोक दक्षिणमें होने से ही दक्षिण दिशा पितरों की मानी गयी है और इसी कारण ग्राम से दक्षिण दिशा में श्मशान भूमि वेदके सिद्धान्तानुसार नियत की गई है इसी से मृतक शरीर को दक्षिणकी ओर ले चलते हैं और दक्षिण को ही मुख करके श्राद्ध पिण्डदान करने की चाल भी इसी लिये है।

सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है कि (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति) चन्द्रमाके ऊपरी भाग में पितर बसते हैं इसी कारण हमारा कृष्णपक्ष पितरोंका दिन और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि होती है। अमावास्या को पितरों का सायं सन्ध्याकाल और पौर्णमासी पर पितरों का प्रातःकाल होता है। इत्यादि व्यवस्था से पितरों के लोक का ठीक २ निर्णय वेदप्रमाणानुकूल हमने दिखा दिया, यदि समाजी कुछ भी निष्पक्ष सत्यप्रेमी होगा तो अवश्य हठ छोड़के इस निर्णय को मान लेगा। हठ दुराग्रह का औषध हमारे पास कुछ भी नहीं है पितृलोक के तुल्य नरकादि भिन्न २ लोक भी वेदादि के प्रमाणों से सिद्ध हैं॥

प्रश्न २०-वेदान्त शास्त्रमें लिखा है कि, जीव न किसी का पिता है न माता हैं पिता मातापन केवल देहके साथ हैं सो शरीरके त्यागने पर माता पितापन काहेका ? और मरने के पीछे माता पिता आदिका श्राद्ध करना वेदान्त गूढ़ सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है क्या ? [इटावा वाले का प्रश्न १२-] माता पिता इत्यादि सम्बन्धसे शरीर जीव से है ? वा निःशरीर जीव से। यदि सशरीर से है तो शरीर वियुक्त जीव किसका माता पिता है ? और उस के लिये श्राद्ध करने का कौन अधिकारी है (नैवस्त्रीनपुमानेष० । श्वेता०) ॥

उत्तर २० । १२—भिन्न २ रीतिसे लिखे होने पर भी दोनों प्रश्नों का अभिप्राय एक ही है इस से दोनों का एक ही उत्तर होगा। ध्यान देने से प्रतीत होता है कि समाजियों में कदाचित् ही कोई किसी अंश में वेदादि शास्त्रों का कुछ मर्म वा सिद्धान्त समझा हो नहीं तो सब के सभी प्रबल अज्ञानसागर में गोता खा रहे हैं। सो यदि समझे होते तो समाजी मतरूप गर्त में क्यों गिरते ! अब हम संक्षेप से उत्तर लिखते है। जीव क्या है यह समझ लेने से उत्तर समझ में आ जायगा। द्वैतवादी न्याय वैशेषिक शास्त्रों में भी जीवात्मा को विभु—व्यापक माना है उस का भी एक शरीरसे शरीरान्तरमें वा स्वर्ग नरकादिमें जाना आना नहीं बनता केवल परिच्छिन्न वस्तुका ही जन्म मरणादि में आना जाना हो सकता है। वेदान्त के अद्वैतसिद्धान्त में सोपाधिक ब्रह्म ही जीव है। यद्यपि उपाधि के अन्तर्गत उपधिमान् निष्क्रिय ही रहता है तथापि व्यवहार में उस के साथ गमनागमनादि कहा जाता है इसका दृष्टान्त यह है कि—

घटसंवृतमाकाशं नीयमानेघटेयथा।
घटोनीयेतनाकाशं तद्वज्जीवोनभोपमः ॥

जैसे घट के भीतर जितना आकाश का अंश घिरा हुआ है वह घटके इधर उधर लेजाने पर वास्तवमें चलता नहीं, आकाशमें घड़ा चलता है घड़ेमें आकाश नहीं चलता। यह तो वास्तविक बात है

परन्तु घटके जाने पर अविद्यावश घटाकाश भी चलता माना जाता है वैसे घटस्थायी अन्तःकरण के चलने पर तदवच्छिन्न चेतन जीव भी स्वर्ग नरकादि में चलना जाना आता माना जाता है वास्तव में तो चेतन सब में आकाशवत् व्याप्त अचल है उसी व्यापक ईश्वर में अन्तःकरण रूप सूक्ष्म शरीर चलता है। मनुस्मृति अ० १२ के १३ श्लोक में चैतन्यात्मसंसृष्ट महत्तत्त्वका नाम जीव रक्खा है। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के प्रकृतिखण्ड में लिखा है कि—

आत्मनः प्रतिबिम्बश्च देहीजीवः सएवंच ।
प्राणदेहादिभृद्देही—सजीवः परिकीर्त्तितः ।

भा०—शरीरावच्छिन्न चेतनात्मा का प्रतिबिम्ब देही और जीव कहाता है, प्राण शरीरादि का धारक पोषक होने से जो देही है वही जीव कहाता है। और श्वेताश्वतर श्रुति में जो लिखा है कि—

बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च ।
भागोजीवः सविज्ञेयः, सचानन्त्यायकल्पते ॥

इसका अर्थ मनु जी के कहे महत्तत्व के अंश पर घट जायगा जीव को भागरूप कहा है और चेतन के भाग नाम टुकड़े होते नहीं इससे चेतन युक्त महत्तत्त्व प्रकृति का अति सूक्ष्मांश जीव है यह अभिप्राय अन्य प्रमाणों के अनुकूल है आकाशवत् चेतन के व्यापक होने पर भी घटवत् महत्तत्त्व का परिच्छन्न सूक्ष्मांश होना शास्त्रों में स्थूल सूक्ष्म और कारण तीन प्रकारके शरीर प्राणियोंके माने गये हैं। पांच प्राण, दशों इन्द्रिय शक्ति और मन बुद्धि इन सूक्ष्म सत्रह तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर कहाता, है कहीं इसी को बढ़ा कर २७ तत्त्वों का संघट्ट सूक्ष्म शरीर कहा है। जैसा कि विवेक चूड़ामणि अ० २ में—

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च, प्राणादिपञ्चाभ्रमुखा-
निपञ्च । बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी, पुर्यष्टकं
सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ ९८ ॥

कहा है कि वाणी आदि पांच कर्मेन्द्रिय, श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच प्राण; आकाशादि पांच सूक्ष्मभूत, मन बुद्धि चित्त अहंकार अन्तःकरण चतुष्टय, अविद्या मूल प्रकृति, महत्तत्त्व रूप काम और शुभाशुभ कर्मवासना इन सब २७ तत्त्वों का संघट्ट सूक्ष्म शरीर कहाता है इसीको लिङ्ग शरीर भी कहते हैं इसका सूक्ष्म आकार भी मनुष्यादि के स्थूल शरीरोंके तुल्य ही होता है। यही सूक्ष्म शरीर स्वर्ग नरकादि योनियों में भ्रमण करता है। घटाकाशादि के तुल्य वस्तुतः अपरिच्छिन्न भी ब्रह्म परमात्मा इस सूक्ष्म शरीर के साथ परिच्छिन्न सा प्रतीत होता हुआ जीव कहाता है।

इस सूक्ष्म शरीर में ही अहंकार ममकार रहते हैं, यह मेरा पुत्र यह मेरा पिता, यह मेरी पत्नी, यह मेरा धन, इत्यादि सूक्ष्म वासना इसी सूक्ष्म शरीर का वासनारूप अंश है। इसी सूक्ष्म शरीर युक्त जीव के साथ पिता पुत्रादि संबन्ध मुख्य है इसी लिये वेद मन्त्र में लिखा है कि--

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीवशरदः शतम्॥

अर्थ-हे पुत्र मेरे प्रत्येक अङ्गसे तुम्हारे प्रत्येक अङ्ग बने हैं हृदय से हृदय, मन से मन, बुद्धिसे बुद्धि, इत्यादि सूक्ष्म शरीर में ऊपर कहे सब अंश पिता के शरीर से पुत्र के शरीर में उद्भूत होते हैं। पूर्व जन्म से जो सूक्ष्म शरीरांश आते हैं वे बीज शक्ति मात्र मृतवत् होते हैं उन को पितृ शरीर से गयी वागादि-शक्तियां ही उज्जीवित वा अङ्कुरित करके कार्य साधक बनाती हैं इस से सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म शरीर के साथ ही पिता पुत्रादि का खास सम्बन्ध है। सूक्ष्म शरीर के सब अंश स्थूल के सारांश माने गये हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में मन को अन्नमय, प्राण को जलमय, और वाणी को तेजोमयी कहा माना है कि अन्नादि का सार भाग मन आदि हैं और सार का मुख्य होना सर्वसम्मत है। सूक्ष्म शरीर के साथ मुख्य सम्बन्ध होने से ही किसी के मरजाने पर कहा जाता है कि अब उसमें कुछ नहीं केवल मट्टी पड़ी है।

आर्यसमाजी कहते हैं कि स्वामी दयानन्द जी परमधाम वा स्वर्ग को गये। तब इनसे पूछना चाहिये कि जीवका नाम तो दयानन्द हो भी नहीं सकता शरीर दयानन्द यहीं भस्म होगया जीव से तुम्हारा कुछ सम्बन्ध भी नहीं है। तब जिस शरीर से सम्बन्ध था उसे तुमने यहीं जला दिया जीव से कुछ सम्बन्ध नहीं तो भी उनकी अच्छी गतिके अभिलाषी क्यों बनते हो ? जैसे तुम स्वा०द० की सद्गति चाहते हो वैसे ही सनातनधर्मी लोग भी अपने माता पितादि सम्बन्धियोंकी सद्गति होनेके अर्थ वेदादि शास्त्रकी आज्ञानुसार श्राद्धादि करते कराते हैं जिससे तुम्हारा पेट क्यों पिड़ाता है।

आशा है कि अब पाठक लोग समझ गये होंगे कि पिता पुत्र सम्बन्ध किसके साथ किसका है स्थूल शरीर मात्र के साथ पिता पुत्र का संबन्ध मानना आ० समाजियों का महा अज्ञान है। वास्तव में अन्तःकरण का संबन्ध ही मुख्य है इसी कारण मन में विरोध होजाने पर शारीरिक सम्बन्ध कुछ नहीं ठहरता। यह जो कहा माना जाता है कि जीव न किसी का पिता न किसी का पुत्र है सो परमार्थ कोटि में घटता है। कर्म उपासना सब संसार कोटि में घटती है ज्ञान होने से पहिले अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्ति के लिये सब कर्मों का विधान है जैसे पुस्तक पठनरूप कर्म से पुस्तकस्थ विषयों का बोध हो जाने पर पुस्तक पठन रूप कर्म की आवश्यकता नहीं रहती। वैसे ही ज्ञान हो जाने पर कर्म की आवश्यकता वैसी नहीं रहती। वेदान्त के सिद्धान्त से सभी कर्म संसार दशा में हैं। पहिले धनोपार्जनादि कर्मोंसे उदासीन होकर जो केवल शास्त्रोक्त धर्मके काम करै उसे ज्ञान हो सकता है और धनोपार्जनादि स्वार्थ साधन के कर्मों में ही अहर्निश लगे समाजी लोगों को कभी ज्ञान प्राप्त होने की सम्भावना ही नहीं है॥

अब सिद्ध हो गया कि माता पितादि सम्बन्ध स्थूल शरीर से बहुत कम है किन्तु सूक्ष्म शरीरस्थ जीव से मुख्य है। सूक्ष्म और कारण शरीर मुक्ति पर्यन्त नष्ट नहीं होते। जब मोक्ष में सूक्ष्मकारण शरीर भी नहीं रहते तभी चौथी पीढ़ी में श्राद्धकी आवश्यकता

भी नहीं मानी, तीन का ही श्राद्ध तर्पण कहा माना है। और श्वेताश्वतर में जो लिखा है कि [नैवस्त्री न पुमानेष०] यह जीव न स्त्री है न पुरुष है। इस के साथ ही दूसरी श्रुति क्या समाजियों ने नहीं देखी ? (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि०) कि तुम ही स्त्री तुम ही पुरुष हो। इन दोनों की ठीक संगति यही है कि परमार्थ दृष्टि से जीव न स्त्री न पुरुष है और कर्मवासनाओं के संयोग से वही स्त्री है वही पुरुष है। जैसे परमार्थ दृष्टि से चेतन शक्तिमात्र जीव न खाता पीता न बैठता उठता है परन्तु शरीर के संयोग से उसी में खाना पीनादि कहा माना जाता है। [द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः। योगसू०] द्रष्टा जीव और दृश्य सूक्ष्मशरीरादिका संयोग ही त्याज्य स्त्री पुरुषादि भावरूप संसारका हेतु-कारण है और दोनों का पृथक् २ होना ही मोक्षरूप कैवल्य है। इस से दोनोंके संयोग पर्यन्त श्राद्धादि सब कर्मोंको करने के लिये वेदादि शास्त्रोंकी आज्ञा है लाहौर वाले के २१ वें प्रश्न का भी उत्तर इसी में आगया है।

प्रश्न १०। (इटावा वाले समाजी का) स्त्रियों को मृतक श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं है तो फिर पानेका अधिकार क्योंकर है !।

उत्तर १०—समाजी को चाहिये था कि स्त्रियों को मृतक श्राद्ध करने का जो निषेध होता उसको प्रश्नके साथ लिखता सो कुछ भी न करके मन माना लिख दिया है। तथापि हम संक्षेप से समाधान दिखाते हैं यदि किसी स्त्री का पति मर गया हो तो पुत्रके विद्यमान होते हुये स्त्री को पति के श्राद्ध की आवश्यकता वा अधिकार इसी प्रकार नहीं है कि जैसे पति पुत्रादि वाली स्त्रियोंको अन्य पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाले व्यवहारों को स्वयं करने की आवश्यकता नहीं होती, श्राद्धादि सभी कर्मोंमें पुरुषको पूरा २ अधिकार है और जिस स्त्रीका पति पुत्रादि कोई खास विद्यमान न हो उसको जैसे राज्यादि करने का अधिकार माना जाता है वैसे ही श्राद्ध का भी अधिकार अवश्य है। देखो—

अपुत्राशयनंभर्त्तुः पालयन्तीव्रतेस्थिता।
पत्न्येवदद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशंलभेतच ॥

भार्यापिण्डंपतिर्दद्याद् भर्त्रेभार्यातथैवच ।
कानीनगूढसहज—पुनर्भूतनयाश्चये ॥
पत्न्यभावेऽधिकुर्युस्ते अप्रशस्ताःस्मृताइमे ।
कुलद्वयेऽपिचोत्सन्ने स्त्रीभिःकार्याक्रियानृप ! ॥
अपुत्रस्य च या पुत्री सापिपिण्डप्रदाभवेत् ।
दुहित्रापुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तुसंस्कृता ॥
आशौचमुदकंपिण्ड—मेकोद्दिष्टंसदातयोः ।
पत्नीकुर्यात्सुताभावे—पत्न्यभावेसहोदरः ॥
पुत्रःकुर्यात्पितुःश्राद्धं पत्नीचतदसन्निधौ ।
अनुजाअग्रजावापि भ्रातुःकुर्वीतसंस्क्रियाम् ॥
ततःस्वसोदरास्तद्वत्क्रमेणतमयस्तयोः ।
पुत्रःशिष्योऽथवापत्नी—पिताभ्रातास्नुषागुरुः ।
पत्नीमातापिताचैव—कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥

भावार्थ—इत्यादि स्मृतियों के अनेक प्रमाण निर्णयसिन्धुमें लिखे हैं, जिस स्त्री के कोई पुत्र न हो वह अपने पति के शयन स्थान अपने शरीरादिकी रक्षा करती और नियम बद्ध रहती अर्थात् पतिव्रत धर्म का यथावत् पालन करती हुई पति के सर्वस्वकी अधिकारिणी होकर पति का पिण्डदानादि श्राद्ध करे । पत्नी के मरने पर उसका श्राद्ध पति करे और मृत पति का श्राद्ध पत्नी करे । कानीन, गूढ़ज, सहज और पुनर्भू के पुत्र पत्नी के अभाव में पितृश्राद्ध करने के अधिकारी हैं अर्थात् पत्नी विद्यमान हो तो वही अपने पतिका श्राद्ध करे कानीनादि न करें क्योंकि ये कानीनादि प्रशस्त पुत्र नहीं हैं इनकी अपेक्षा पत्नी अन्तरंग होने से श्रेष्ठ है यदि श्वशुर और पिता दोनोंके कुलमें सब का नाश होजाय दोनों कुलमें महामारी आदि किसी भी कारण कोई भी जीवित न रहा हो तो स्त्रियोंको चाहिये कि दोनों कुलके पति पिता भ्राता पुत्रादि सबका श्राद्ध करें जो कन्या अपने पिताके अकेली

हो अर्थात् उसका कोई भ्राता न हो तो पिता के मरने पर वह कन्या स्वयं श्राद्धादि पिण्डदान करे। पुत्रके न होनेपर उसके तुल्य पुत्री भी अपने माता पिता का पिण्डदानादि श्राद्ध करे। पुत्र के न होने पर पति मरजावे तो उसका दशगात्रादि पिण्डदान श्राद्ध पत्नी करे और पत्नी भी मरगई हो तो सहोदर भाई श्राद्ध करे। पिताका श्राद्ध पुत्र को करना चाहिये परन्तु पुत्र कहीं दूर देशान्तर में हो ऐसे समय में पति की मृत्यु हो जाय तो पति का पिण्डदान पत्नी करे। भ्राताके मर जाने पर छोटी व बड़ी भगिनी उसका श्राद्ध करे और उन छोटी बड़ी बहिनों के पुत्रों को भी मामा के श्राद्धका अधिकार है। पति वा श्वसुर के मरने पर पत्नी वा पुत्रवधूको भी पिण्डदानादि श्राद्ध करनेका अधिकार है। इत्यादि प्रमाणोंसे स्त्रियोंको मृतपति आदि के श्राद्धका अधिकार सम्यक् सिद्ध है। यदि कहीं ऐसा लेख स्मृति पुराणादि में हो कि स्त्री को श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है तो प्रकरणके अनुसार उसका अर्थ यही होगा कि जिसके पुत्रादि विद्यमान हों उसको स्वयं श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। आशा है कि स्त्रियों को मृत पत्यादि के श्राद्ध का अधिकार न बताने वाले समाजी महाशय अब लज्जित संकुचित होकर सत्य समाधान को मानके सन्तुष्ट होंगे ॥

प्रश्न—११कनागतोंमें हजामत [बाल] बनवानें और कपड़े धुलाने सिलाने आदिका किस शास्त्रमें निषेध है ? क्या मैले कुचैले फटे लत्ते रहनेसे ही पितर प्रसन्न होते हैं ?॥

उत्तर ११–शास्त्र की मर्यादा को सर्वथा ही न जानने वाले मूर्ख लोगोंको ऐसी ही वेसमझीकी शंकायें हुआ करती हैं। अब सनातन धर्मियोंमें भी मनुष्योंका अधिक भाग धर्मकर्म की मर्यादासे शून्य होगया इस कारण हम संक्षेपसे इस उक्त प्रश्नका समाधान सबके उपकारार्थ लिखते हैं। हम पहिले किसी प्रश्नके उत्तरमें लिखचुके है कि

ततःशेषाणिकन्याया यान्यहानितुषोडश।
क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥

भा०–सिद्धान्त शिरोमणि नामक ज्योतिष के सर्वमान्य ग्रन्थ में

लिखा है कि कन्या राशि के १६ दिन यज्ञ करनेके तुल्य पुण्य दिन हैं इनमें पितरों के लिये किया श्राद्ध अक्षय पुण्य का हेतु होता है। जैसे ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रतकी रक्षाके लिये सर्वविध शृङ्गारका त्याग करता हुआ बाल रखा लेता और धोबीसे कपड़े नहीं धुलाता वैसेही सब प्रकारके व्रतोंमें गृहस्थको भी ऐसा ही करना चाहिये। अथर्व वेदमें लिखा है कि-

दीक्षितोदीर्घश्मश्रुः ॥

ब्रह्मचर्य दीक्षा लेने वाला डाढ़ी मूछें सब रखाये रहे पृथिवी पर सोवे। पितरोंके लिये मनुजी कहते हैं-

अक्रोधनाःशौचपराः सततंब्रह्मचारिणः।

पितर लोग स्वभाव से ही क्रोध रहित, अतिशुद्धि रखने वाले निरन्तर ब्रह्मचारी होते हैं पितृश्राद्धके दिनोंमें श्राद्धकर्त्ता यजमानको भी पितरोंके तुल्य स्वभाव वाला होना चाहिये। कनागतादि श्राद्ध के दिनोंमें श्रद्धालु सनातनधर्मीको ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर भूमि पर शयन करना और बाल नहीं बनवाना चाहिये। क्योंकि बाल रखाना ब्रह्मचर्यका ऊपरी पुराना चिन्ह है।

भगवान् रामचन्द्र जी तथा राजा युधिष्ठिरादि जब २ वनवासमें रहे तब सभी जटाधारी भूशायी और धोबियों से कपड़े नहीं धुलाते रहे। धोबी के धोये कपड़े श्राद्धादिमें धारण करना एक प्रकार की अशुद्धि है इसी लिये यज्ञों में धोबी के धोये कपड़ों को धारण करना मना किया है। अधिक सफेद न होने पर भी अपने आप धोये फीचे कपड़े अधिक शुद्ध होते हैं। धोबीके यहां सब जातियोंके महाअशुद्ध वस्त्रोंके विशेष संयोग से अच्छे वस्त्र भी अशुद्धहो जाते हैं। जब कि यह नियम नहीं है कि जो लोग धोबी से कपड़े न धुलावें वे सब मैले कुचैले ही रहें तब धोबी के सर्वथा आधीन होने वाले समाजी की बुद्धिका दोष है। हम प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं कि अब भी पूरी २ शुद्धि करने वाले व्रतधारी भारत में अनेक हैं जो कभी भी धोबी को कपड़ा नहीं छुवाते पर उनके वस्त्र धोबी से धुलाने वालोंके वस्त्रोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध प्रत्यक्ष हैं। अर्थात

पितर शौच प्रधान हैं श्राद्ध कर्ताको भी ठीक २ पवित्र रहना चाहिये धोबीके धोये वस्त्र धारण करेगा तो अपवित्र अवश्य रहेगा। इससे वस्त्र स्वयं फींचा करे। सभी कर्मकाण्डों में दर्जी के सिये कपड़े धारण करना निषिद्ध है एक धोती दूसरा उत्तरीय वा अंगोछा इन ही दो शुद्ध वस्त्रों से सब श्राद्धादिक कर्म करने चाहिये। इससे वस्त्र सिलाना अनुचित समझते हैं। सत्य बात तो यह है धर्म का शास्त्र की आज्ञानुसार सेवन करने में तत्पर रहने वाले ब्राह्मणादि को अन्य समय भी धोबीसे कपड़े नहीं धुलाने चाहियें और व्रतधारियों के तुल्य सदा रहना चाहिये पर जो आलस्यादि के वश हो कर्म धर्म हीन हो गये उनके लिये यह विचार लोकमें चल गया है कि सब दिन नियमें नहीं सधता तो कभी २ व्रतादिके समय नियम साधना भी अच्छा अवश्य है। इससे विशेष लिखना व्यर्थ है

प्रश्न २१–अद्वैतके सिद्धान्त मानने वाले श्री १०८ स्वामी शङ्कराचार्य के मतानुयायियों से प्रश्न है कि वे किस प्रकार श्राद्ध कर सकते हैं जब कि उनका मूल मन्त्र यह है कि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

और जब यह सब ब्रह्म ही है तब मातृ पितृ सम्बन्ध कहां और उसके विना श्राद्ध किसका ? ॥

उत्तर २१–यद्यपि इस प्रश्नका भी उत्तर २० वें प्रश्न के उत्तर में आगया है तथापि संक्षेप से कुछ लिखे देते हैं। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि प्रत्यक्ष सहस्रों युक्तियों से सिद्ध वेदान्तादि का दार्शनिक सिद्धान्त समाजियों को न मानने पड़े अर्थात् अवश्य मानने ही पड़ेगा। समाजियों में न्याय शास्त्र की बातों के जानने मानने वाले अनेक हैं इससे वे अवश्य ध्यान देंगे–देखो न्यायशास्त्र के सिद्धान्त से सुवर्ण आग्नेय और मुक्ता नाम मोती आप्य है अभिप्राय यह कि सुवर्ण अग्नितत्त्व का विकार है और मोती जलतत्त्व का विकार है। और यह नियम है कि जो जिसका विकार वा परिणाम होता है वह वास्तव में ठीक २ आन्दोलन करने पर वही ठहरता है जैसे सूत से बने कपड़ों को तीन काल में भी कोई समाजी

सिद्ध नहीं कर सकता कि सूत या रुई कपास से भिन्न लेशमात्र भी अन्य अंश भव्य हैं किन्तु सदा यही सिद्ध होगा कि कपास रुई या सूत ही कपड़ा है, सुवर्ण के आभूषण सुवर्णसे भिन्न वस्तु तीनकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकते किन्तु सदा सुवर्ण रूप ही सिद्ध होंगे। इसी विचार को सिद्ध करने के लिये वेदान्त छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि—

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातꣳस्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥ प्रपा० ६ प्रा० १।

अर्थ—हे सौम्य श्वेतकेतो! मिट्टीके एक ढेलेसे मिट्टी के सब विकारों का पता लग जाता है कि यह सब वृक्ष वनस्पति, मानुषादि शरीर, सोना चांदी तांबा पीतल लोहादि सहस्रों नाम वाली केवल मिट्टी मात्र है मिट्टीसे भिन्न कुछ नहीं है यह विचार समझने जानने के लिये है किन्तु अज्ञान सम्बद्ध व्यवहार की सिद्धि के लिये सब पृथक् २ मानने पड़ता है। यद्यपि समाजी जानते मानते कि मोती एक प्रकार का जल है सुवर्ण एक प्रकार का अग्नि है पर अग्नि से भिन्न ही मानते हुए व्यवहार करते हैं। हमारा प्रयोजन यह है कि समाजियोंको भी ज्ञान कोटिका भेद पृथक् २ अवश्य मानने पड़ेगा।

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति०।
यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकं पश्येत्॥

भा०—जहां तक द्वैत सा रहता है वहीं तक देखना सुनना आदि व्यवहार होता है और जब एक अद्वैत ब्रह्म ही सब होजाता है अर्थात् द्वैत का आचरण नष्ट हो जाता है तब द्वैत न होने से किससे किसको देखे वा जाने?। जैसे समाजियों के मतमें पृथ्वीके सब घट पटादि विकार वास्तव में पृथ्वीरूप होने पर भी उन २ सुवर्ण हीरा मणि आदि के सम्बन्ध और व्यवहार भिन्न २ होते हैं। जैसे

विभुकालके एक होने पर भी और न्यायसे विरुद्ध कालमें अंशांशी भाव वास्तविक सिद्ध न होने पर भी कालके सहस्रों अवयव पृथक् २ मान के उनका सम्बन्ध और व्यवहार समाजी आदि सभी प्रबल तार्किक लोग भी करते हैं वैसे ही सनातनधर्मी लोग अद्वैत एक ब्रह्ममें ही उपाधि भेदसे माता पितादि सम्बन्ध मानकर श्राद्ध तर्पण होम यज्ञादि करते हैं उसमें कोई भी अनुचित वा दोष कहा नहीं जा सका।

और एक बात यह भी ध्यान दो कि एक मनुष्य है और उसको ऐसी शक्ति स्वयमेव प्राप्त हो जाय कि वह एक स्वरूपके अनेक स्वरूप बनाके अनेक प्रकार के सम्बन्ध और कर्म धर्मादि व्यवहार आपस में करे तो बताओ कि दोष क्या है ?। यदि कोई उसे पूछे कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो वह उत्तर देता है कि मेरी इच्छा, वैसे ही एक ब्रह्म ही यदि देव पितृ मनुष्य माता पिता पुत्रादि असंख्यरूप धारण करके सब श्राद्धादि करता कराता है और वही समाजी रूप से श्राद्धादि का खण्डन करता और सनातनधर्मी रूप से श्राद्धादि का ठीक २ युक्ति प्रमाण पूर्वक मण्डन करता हुआ स्वयं अपनी क्रीड़ा से आनन्द में मग्न होता है तब भी दोष वा अनुचित कुछ नहीं, इस रीति से एक अद्वैत में सब कुछ घट सकता है।

प्रश्न २२—धर्मानुगो गच्छति जीव एकः।

मरने के पीछे मनुष्यका किया धर्म ही साथ जाता तथा उसकी सहायता करता है अगर यह सिद्धान्त सत्य है तो दूसरों के लिये धर्म वा दानादि से किसी को क्या लाभ पहुंच सकता है ? और दूसरों के कर्म का फल तीसरे को मिलने से जो (अकृताभ्यागम) दोष आता है इसकी निवृत्ति कैसे कर सकते हो ?॥

[इटावा वाले समाजी का १४ वां प्रश्न] जीव की निज कर्मानुसार गति होती है वा नहीं ? यदि होती है तो मृतक श्राद्ध करने का क्या फल है ? ॥

उत्तर २२-१४—इन दोनों प्रश्नों का अभिप्राय एक ही है। समाधान देखिये पुरुष का किया धर्म ही मरने पर साथ जाता है इसका अभिप्राय यह है कि संचित किये धनादि पदार्थ वा इष्ट मित्र स्त्री

पुत्रादि कोई भी मरणानन्तर साथ नहीं जाते। इस लिये मनुष्य को चाहिये कि धनादि संचय करने की अपेक्षा धर्म का संचय करने में विशेष प्रयत्न करे किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि पुत्रादि लोग श्राद्ध न करें। "धर्मानुगोगच्छति जीव एकः,, इस स्मार्त्त वचनका भी अभिप्राय यही है कि अपने किये वा अपने अंश पुत्रादि के किये धर्म को साथ लिये जीव अकेला ही जाता है किन्तु यहांके स्त्री पुत्र धनादि सहायतार्थ साथ नहीं जाते, जब यहां के स्थूल पदार्थों के संग जाने का निषेध करना शास्त्रकारों का अभिप्राय है तथा सूक्ष्म संस्कार रूप धर्म का सूक्ष्म शरीर वाले जीव के साथ जाने का अभिप्राय है तब पुत्रादि कृत धर्म से पितादि की सद्गति होने में कोई भी बाधक नहीं है।

रहा यह विचार कि पुत्रादि का किया धर्म अपना किया नहीं है अन्य के किये कर्मका फल अन्यको कैसे प्राप्त हो सकेगा? तो सुनो श्राद्ध का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रकारों ने दायभाग की व्यवस्था बांधते हुए सपिण्डता का विचार किया है। समान नाम एक है पिण्ड नाम शरीर जिनका वे सब आपस में सपिण्ड कहाते हैं मनु जी ने भी छः पीढ़ीमें सपिण्डता विशेष कर मानी है सपिण्ड वालों को ही श्राद्ध करने का अधिकार है। जिस सनातनधर्म के वेदादि शास्त्रों में एकता के विचार का अन्त ही नहीं रक्खा गया किन्तु अनन्त सृष्टि की एकता दिखायी और मानी है। 'वसिष्ठ भरद्वाजादि महर्षियों के सन्तान होने का दावा सहस्रों पीढ़ी बीत जाने पर भी हम अब तक मान रहे हैं। तब इतने लम्बे विचार को छोड़ के अति समीपी अंशों में भी ये समाजी लोग जो भेद भाव फैलाना चाहते हैं इससे ये समाजी देश हित के भी जानो पूरे शत्रु हैं।

आत्मावैपुत्रनामासीति वेदश्रुतिः। भार्यापुत्रः स्वकातनूः। पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भेभूत्वेह जायते इति मनुस्मृतौ॥

भा०—वेद में लिखा है कि हे पुत्र! तू मेरा आत्मा नाम स्वरूप है अर्थात् पिताका ही एक रूपान्तर वा अंश पुत्र है। स्त्री और पुत्र

अपना ही शरीर हैं। पति पुरुष अपनी पत्नी में अपने सूक्ष्मांश रूपों से प्रविष्ट हो गर्भ रूप बनकर फिर से पैदा होता है इस से पिता और पुत्र एक ही हैं इनमें भेद कुछ नहीं है जब इत्यादि अनेक शास्त्रकार पुकार २ के पिता पुत्रादि की एकता दिखा रहे हैं और ध्यान देने से युक्तियुक्त भी दीखती हैं तब ये समाजी महाशय श्राद्ध खण्डन के मिषसे पिता पुत्रादि में भी भेद भाव करके फूट फैलाना चाहते हैं यह आशय निकलता है। देश सुधारक लोग इस शास्त्राभिमत पिता पुत्रादि की एकता को लक्ष्य में रखते हुए देश भर के ब्राह्मणादिमें एकता सम्पादन करके पूरा २ देश हित साधन कर सकते हैं। चाहें यों कहो कि हमारे वेदादि शास्त्रोंमें कहे सब धार्मिक विचारों में अनेक रहस्य विचार महर्षियोंने संस्थापित कर दिये हैं। जैसे हाथों के द्वारा परिश्रम से बनाया पकाया भोजन मुख खाता और पेटमें पहुंचने पर क्षुधाकी निवृत्ति होती है यदि यहां यह विवाद उठाया जाय कि अन्य के किये काम का फल अन्य को हो गया इस से न्यायमतानुसार कृतहान और अकृताभ्यागम दोष भी आगये कि जिन हाथोंने भोजन बनाया था उनको भोजनका फल कुछ न मिला अर्थात् हाथोंने कुछ नहीं खाया यही कृतहान दोष है और जिस पेट वा मुखने कुछ काम नहीं किया था उसने अच्छे २ माल उड़ाये यही अकृताभ्यागम दोष है अर्थात् कर्म करने वाले को उसका कुछ फल न मिलना और कुछ कर्म न करने वाले को फल मिलजाना। अब प्रश्नकर्त्ता समाजी से पूछना चाहिये कि इस कृतहान और अकृताभ्यागम दोष की निवृत्ति तुम कैसे करोगे ? क्या हाथों से पेटको वा मुख को पीटोगे। यदि कहो कि हाथ मुख पेट सब एक ही हैं इस से अन्य के किये का फल अन्य को नहीं हुआ। हाथों ने पेट के लिये ही भोजन बनाया था इस से दोष नहीं है तब वही समाधान यहां भी हो जायगा कि पिता पुत्रादि सपिण्ड के सब लोग एक ही हैं शास्त्र सिद्धान्तके अनुसार पुत्र भी अपने पिताकी सद्गतिके लिये ही श्राद्ध करता है और श्राद्ध का फल पितरों को पहुंचने के पश्चात्

उसका प्रतिफल पुत्रादि को भी प्राप्त होता है जिससे कृतहान और अकृताभ्यागम दोष मृतक श्राद्ध में नहीं आते ॥

प्रश्न १३ [इटावा वाले समाजी का] मोक्षगत जीवों के निमित्त श्राद्ध करना चाहिये वा नहीं। यदि चाहिये तो वे किस प्रकार पाते हैं यदि नहीं चाहिये तो क्या निश्चय है कि जीव मोक्षमें है वा अलग।

उत्तर १३—इस प्रश्न का उत्तर १०। ४ प्रश्नों के उत्तर में पहिले आगया है कि तीन ही पीढ़ियोंका श्राद्ध क्यों होता है। जिसमें सिद्ध कर दिया है कि तीन पीढ़ी तक श्राद्ध हो चुकने पर चौथे के मरने पश्चात् ऊपर वाला चौथा मुक्त हो जाता है इसी लिये चौथा पिण्ड महर्षियों ने नहीं रक्खा है। जिन लोगों को शास्त्रों के प्रमाण पर पूरा २ विश्वास है उनको अन्य प्रमाण की कुछ भी अपेक्षा नहीं है क्योंकि उनको यह शंका ही नहीं कि हमारा वृद्ध प्रपितामह मोक्ष में गया वा नहीं। और समाजियों के बाप दादे मोक्ष में जा भी नहीं सकते क्योंकि उनके यहां श्राद्ध का ही खण्डन है और यदि किसीके पिता, प्रपितामह अकामहत श्रोत्रिय नाम पूर्णतया जीवन्मुक्त विरक्त योग युक्त संन्यासी होकर मानुष योनिसे ही सीधे मोक्ष को प्राप्त हो गये हों तो भी तीनों के नाम से श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि श्राद्ध के देवता वसु रुद्र और आदित्य माने गये हैं वे सदा सर्वत्र विद्यमान और स्वयं मुक्त हैं वे ही पितृ पितामह और प्रपितामहके रूपोंसे श्राद्धको ग्रहण करते और उसका प्रतिफल देकर श्राद्धकर्त्ता को कृतार्थ करते हैं इससे मोक्षगत जीवोंके लिये श्राद्धकी आवश्यकता न होने पर भी कर्मके नित्य होनेसे कर्म का त्याग नहीं है क्योंकि उस का प्रतिफल श्राद्धकर्त्ताको मिल जानेसे सार्थकता विद्यमान है ॥

प्रश्न-१५ (इटावा वाले समाजीका) सपिण्डीकरणमें तीन शाखों में मेल किया जाता है सो क्या तीनों शाखें विना योनियों के कहीं विद्यमान हैं ? या यह मेल करना गुड़ियों का खेल बनाना है। यदि वे जीव निज कर्मानुसार किन्हीं योनियोंको पा चुके हैं तो उन शरीरों के साथ दूसरेका क्या मेल और वे कौन २ शरीरोंमें हैं इसका निर्णय क्या है ? ॥

उत्तर १५-१६-समाजियोंके इस अज्ञानका समाधान हम पहिले समाधानोंमें सम्यक् प्रकारसे करचुके हैं, कि [यस्यां पितर आसते० वेदे] जिस स्वर्ग रूप पितृलोक में पितर लोग निवास करते हैं वह अन्तरिक्षमें पृथ्वीसे ऊपर तीसरा लोक है, और पितर एक योनि है कि जिसमें दिव्य शरीरोंसे वे पितर स्वर्गीय सुख का अनुभव करते हैं। ऐसी दशामें "विना योनियोंके कहीं विद्यमान हैं" ऐसा प्रश्न करना समाजीका महाअज्ञान है। क्या देव पितर आदि योनियोंका किसी प्रकारका विग्रहवत्त्व न समझ पाना यह समाजियोंका अज्ञान उनकी महामूर्खताको सिद्ध नहीं करता? ॥

वे मृत जीव अपने और पुत्रादि के दिये श्राद्ध कर्मों के अनुसार जिस किसी योनिको पाचुके हैं तब उन शरीरोंके साथ दूसरों [जो अपने नहीं हैं] का वास्तव में मेल नहीं है। समाजियोंके पितर मरते ही समय जान लेते हैं कि ये कुपुत्र समाजी अब ही से दूसरे बन गये अब ये हमारा नाम भी नहीं लेंगे, दूसरे शब्दका अर्थ यही है कि जो जिसके सुख दुःखमें सहानुभूति कुछ न रक्खे। लोकमें दूसरे शब्दका व्यवहार ऐसे ही प्रसंगमें आता है, संसार में कुपुत्र वही है जो मरण पश्चात् पितरों का श्राद्ध तर्पण भी न करे इसी से कहा है कि [कुपुत्रमासाद्य कुतो जलाञ्जलिः] परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि सनातनधर्मी पिता पुत्र आस्तिक होनेसे द्वैतभाव नहीं करते किन्तु अनेक जन्मों तक वा मोक्ष पर्यन्त एकताका रस्सीसे शास्त्रकी आज्ञानुसार बद्ध रहते हैं। सनातनधर्मी पुत्र अपने को उसी पिता का अंश मानता हुआ कदापि पिता से भिन्न दूसरा बनने का साहस नहीं कर सकता। वह वेदादि शास्त्रोंको मानता हुआ पिताके ही सूक्ष्म शरीरका अंश अपने मन आदि अन्तःकरण को मानता है। जिस सनातनधर्मका मन्तव्य है कि (अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्) इस के अनुसार संसार भरके सब आत्मा वास्तव में एक हैं यह हमारा है तथा यह अन्य है ऐसा विचार तुच्छ लोगों का होता है। सनातन धार्मिक विराट् सिद्धान्तमें सभी भूमण्डल भर एक ही है तब पिता पुत्रमें भी द्वैतभाव खड़ा करना आर्यसमाजियों की

साक्षात् फूट वा विरोधकी मूर्त्ति सिद्ध करता है। हे समाजी! वेद विरुद्ध भेद वा फूटको छोड़ो यह फूट नीतिसे भी विरुद्ध है ॥

प्रश्न—१७। १८—सपिण्डीकरण श्राद्ध में,वह पिण्ड,जो कि जीव का शरीर माना जाता है काटकर स्त्री पुरुष में मिलाया जाता है ऐसी अवस्थामें घात दोष लगता है वा नहीं। यदि वे जीव जिनमें सपिण्डीसे मेल किया जाता है बैल सिंह पश्वादि अज्ञात योनियोंमें हैं तो जिसका मेल किया है वह उस मेलके कारण उन्हीं योनियोंको जायगा अथवा और कोई दूसरी गति पावेगा? ॥

उत्तर—ये भी दोनों प्रश्न इटावा वाले समाजी महाशयके हैं। इन दो प्रश्नोंमें मुख्य दो बातें हैं १—शरीर रूप माने हुए पिण्डके काटनेमें हिंसा दोष क्यों नहीं?। २—बैलसिंहादि अज्ञात योनियोंमें वह जायगा वा कहां जायगा?। इसमें पहिली बातका संक्षेपसे उत्तर यह है कि अन्नादि के पिण्डको शरीरों का उपादान कारण मानकर शरीर कहते मानते हैं। जैसे मट्टी ही घड़ी है ऐसा कथन उपादान उपादेयका अभेद भाव मानकर कहा जाता है किन्तु कार्य रूप शरीर पिण्ड रूप कारणसे भिन्न है। समाजी को अवश्य मानना पड़ेगा कि अस्मदादिका शरीर अन्नमय है अन्नसे ही बना अन्नसे ही जीवित रहता है इसीसे अन्न भी शरीर रूप होनेसे शरीर ही है तब ऐसी दशा में समाजीको बताना चाहिये कि प्रतिदिन अन्नरूप शरीरको तोड़ २ वा कुचल २ कर खानेसे तुमको हिंसा लगती है वा नहीं? यदि नहीं कहो तो क्यों? और हमारे यहां तो समाधान स्पष्ट है कि शास्त्र मनुष्यादि रूपमें बने शरीरोंके नाश करनेमें हिंसा दोष बताता है अन्न रूप शरीरके काटने तोड़ने में वह दोष नहीं हो सकता। जिस मट्टी से घट बनने वाला है उसके तोड़ने फोड़नेसे घट नहीं फूटता। तथा न्याय दर्शन वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि [अन्न ही प्राणियोंके प्राण हैं] सो वास्तव में जीवन रूप प्राण शक्ति अन्न में विद्यमान है इसी कारण अन्नके आहारसे जीवनकी रक्षा होती है। जब कि अन्न ही प्राण स्वरूप है तब हम प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशयसे पूछते हैं कि आप प्रतिदिन जो अन्न को खा जाते हो तब प्राणों को खा लेने का

पाप तुमको क्यों नहीं लगता ? क्या तुम प्राणों को नित्य रखा लेते हो ? यदि तुम को प्राणरूप अन्न के खालेने में दोष नहीं लगता तो वैसे ही पिण्ड के काटने में भी पाप दोष नहीं लग सकता ।

द्वितीय बात का संक्षेप से उत्तर यह है कि जिस का सपिण्डी करण किया जाता है वह बैल सिंहादि किसी योनि में नहीं जाता किन्तु जिस श्राद्ध तर्पणादि पितृयज्ञ के प्रताप से जैसे उसके पूर्वज पितादि लोग पितृलोक रूप स्वर्ग में गये वैसे वह भी प्रेतत्वभाव को छोड़के स्वर्ग में अपने पूर्वजों के दिव्यविग्रहों के साथ स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है इसी उद्देश को लक्ष्य में रखके महर्षियों ने वेदादि शास्त्रों द्वारा मृतक के लिये और्ध्वदैहिक कर्म करने की आवश्यकता दिखायी है ।

मृत्युर्यमस्यासीद्दूतःप्रचेता असून्पितृभ्योगमयाञ्चकार।

अथर्व० १८

इस मन्त्र का साफ २ अक्षरार्थ सायणाचार्य भाष्यकार की समझत्यनुसार यह है कि यमराज का मृत्यु नामक दूत बड़ा प्रकृष्ट बुद्धिमान् है वह मृत मनुष्य के असु नाम प्राणों को (पितृभ्यो–पितृभावायेति सायणः) पितृयोनि प्राप्त करनेके लिये भेज देता है, अर्थात् (पितृभ्यः) इसको चतुर्थी विभक्ति का बहुवचन माना है परन्तु यह स्मरण रहे कि वेदादिशास्त्रों के सिद्धान्तानुसार उन ही मनुष्यों के प्राणों को पितृलोक में ले जाता है कि जिनका श्राद्धादि कर्म उनके पुत्रादि लोग ठीक २ श्रद्धा से मरण के पश्चात् करते हैं । सनातन धर्मी लोगों को एक बाल भर भी अविश्वास वा सन्देह नहीं है कि हमारे पितर कहां गये किन्तु उनको पूर्ण विश्वास है कि वे स्वर्ग में गये और वहीं यह भी जायगा कि जिसका मैं सपिण्डीकरण करता हूं । सपिण्डीकरण का असली अभिप्राय पितृपितामह प्रपितामह की श्रेणी में सम्मिलित करना है कि जिससे मासिक पार्वण श्राद्ध वा पिण्ड पितृयज्ञ में उसको भी प्रतिमास पिण्डदान दिया जा सके इससे सिद्ध हुआ कि जैसे क्षुधा की निवृत्ति के लिये पकाये अन्न से अवश्य ही भूख निवृत्त होती है वैसे मृतक की स्वर्ग प्राप्ति के लिये

किये श्राद्धों से अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त होता है इससे वह मनुष्य बैल सिंहादि योनियों में कदापि नहीं जाता क्योंकि—

नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिंतातगच्छति।

गीता में भगवान् ने कहा है कि उत्तम कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता, यहां भी मृत मनुष्य के अंश रूप पुत्रादिने किया श्राद्धादि सुकृत उसीका किया माना जायगा इससे उस की उत्तम गति होनेमें लेशमात्र भी सन्देह आस्तिक लोगोंको नहीं है।

और बैल सिंहादि योनियों में जाने वालों की संख्या भी कम नहीं है क्योंकि जिन २ नमाज़ी समाजी आदि मतों में श्राद्धका खण्डन है उन सभोंके पितर बैल वा सिंह व्याघ्रादि योनियोंमें जाया करते हैं इससे उन योनियों में अवनति होने की शंका भी नहीं है।

प्रश्न २३-[लाहौर वाले का] सपिण्डी करने की विधि में जो तीन पितरों को पिण्डरूप में एकीकरण किया जाता है उसमें परमेश्वर को यदि एकीकरण स्वीकार न हो तो सपिण्डी करने का क्या लाभ ? और जब ईश्वर एकीकरण करेगा तो क्या श्राद्ध भोक्ता उस एकीकरण में बाधा डाल सकता है ?॥

उत्तर २३-पाठकलोग ध्यान दें कि समाजीका कैसा विलक्षण प्रश्न है आप लोग समाजी से पूछ सकते हैं कि गवर्नमेंट के न्यायालयों में भी यह नियम है कि वादी प्रतिवादी दोनों आपस में राजी नामा के रूपसे एकीकरण नाम मेल कर ले तो न्यायाधीश उसे सदाही स्वीकार करलेते हैं क्या समाजियोंके निराकार ईश्वरको फूट वैर विरोध अनैक्य ही स्वीकार है क्या पितरों की एकता रूप मेल को ईश्वर स्वीकार नहीं करेगा ऐसी चिट्ठी समाजी के पास निराकार के दफ़्तरसे क्या आगई है ?। हमें अनुमान होता है कि घास पार्टी मांस पार्टी, लाला मुन्शीराम, वा रलाराम, 'धर्मपाल आदि जिन २ नेता मुख्य समाजियोंमें अब तक फूट हुई उनमें फिर एकीकरण नाम एकता रूप मेल नहीं हुआ सो यह निराकार ने ही इन सबमें फूट वा विरोध कराया है इसी कारण वह ईश्वर इनकी एकता को स्वीकार नही करता यह प्रश्नकर्त्ता समाजी को विदित है

इसी विचार से समाजी ने पितरों के मेल में शंका की होगी। परन्तु समाजी को स्मरण रखना चाहिये कि सनातन धर्मियों का सगुण साकार भगवान् देव पितर मनुष्यादि किसीमें भी फूट वा विरोध कराना कदापि स्वीकार नहीं करता किन्तु वह सदा ही सबकी एकता को स्वीकार करता है इसी लिये उसने वेदके द्वारा श्राद्ध का उपदेश करके स्वर्गादि में गये पितरोंसे मेल कराया है। ईश्वर को मेल स्वीकार अवश्य है इसीसे वेदमें कह दिया है कि—

संगच्छध्वंसंवदध्वं संवोमनांसिजानताम्।

इस मन्त्र में कायिक वाचिक मानस तीनों प्रकार मेल करने का आदेश सनातनधर्मी ईश्वर ने किया है। परन्तु निराकार दशा में समाजियों की आज्ञानुसार बद्ध रहने वाले समाजी ईश्वर को मेल होना अवश्य स्वीकार नहीं होगा इसीसे समाजियों द्वारा श्राद्ध का खण्डन उसने कराया है॥

प्रश्न २४—और तत्क्षण जन्म धारण करने के मतवादियों में जब १०० । ५० और ५ वर्ष पहिले तीनों ने जन्म धारण कर लिया फिर उनको सपिण्डी करने का लाभ ?॥

उत्तर २४—यह प्रश्न अत्यन्त बे समझी से किया गया है क्योंकि जब १०० । ५० । वा ५ वर्षके बाद कहीं कभी कोई सपिण्डीकरण करता ही नहीं और न किसी ग्रन्थ में वैसा लेख है तब समाजीका प्रश्न ऊपर को धूलि फेंकने से अपने ही ऊपर पड़ने के तुल्य सिद्ध होगया। सपिण्डीकरण प्रायः सर्वत्र १२ वें दिन हो जाता है। और हम पहिले भी लिख चुके हैं कि देव पितृ आदि सूक्ष्म योनियों में जाना भी जन्मधारण करना है क्योंकि देवादि के भी दिव्य विग्रहरूप शरीर होना सर्वसम्मत है तब केवल पार्थिव प्रत्यक्ष योनियों के धारणको ही जन्म समझना तथा मानना समाजीका महा अज्ञान सिद्ध होगया। और जन्म धारण करने में जब कई प्रकारके मतवाद नहीं हैं तब उनको अनेक मतवाद मानना भी समाजीका अज्ञान है।

प्रश्न २५—सपिण्डी करने में पिंडीको प्रेतका देह माना जाता है और फिर उसके टुकड़े किये जाते हैं इसमें टुकड़े करने वालों को माता पिता के देहको छेदने का पाप क्यों नहीं लगेगा ?॥

उत्तर २५-इसका उत्तर इटावा वाले समाजीके १७ सत्रहवें प्रश्न के उत्तरमें ऊपर आगया है इससे विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। एक समाजी ने कहा कि मानव जातिका जीवन एकमात्र अन्न है। तब द्वितीयने कहा कि तुम अपने जीवनको पीस पिसवा डालते फिर अग्नि में भूंज डालते हो फिर उसी जीवन को चबा चबा के निगल जाते हो सो क्या जीवनकी ऐसी दशा करनेसे तुमको दोष नहीं लगता। न्याय वैशेषिक में मानव शरीरों को पृथिवी रूप करके स्पष्ट लिखा है परन्तु समाजी लोग पृथिवी नाम रूपसे अपने शरीरों का व्यवहार न करके आत्मभाव से व्यवहार करते हैं। सनातनधर्मियों का मन्तव्य यह है कि इसी पिण्ड का सारांश शरीर बनता है इस हेतुसे कार्य कारणका तादात्म्य मानकर पिण्डको शरीर माना गया है। यद्यपि घट भी सर्व सम्मत मट्टी ही है तथापि मट्टीके टूटने फूटनेसे घट नहीं फूटता है। वैसे ही शरीरों के साथ पिण्ड की एकता होने पर भी पिण्ड के तोड़ने से शरीर नहीं टूटता है।

प्रश्न २६—दुर्व्यसनी मृत पुरुषों की तृप्ति के लिये यदि ब्राह्मणों द्वारा उनके आहारादि पहुंचाने में जो दोष देशमें फैलेंगे उनका फल क्या होगा बताओगे क्या ?॥

उत्तर २६-दुर्व्यसनी मृतपुरुषोंकी तृप्तिके लिये जो ब्राह्मणों द्वारा उनके आहारादि पहुंचाने का अधर्म अन्याय वैर विरोधादि अनिष्ट फल होगा जिससे दिन २ भारत सन्तानों की अधोगति होगी और यह अपराध प्रश्नकर्त्ता जैसे समाजियों को लगेगा। ऐसे ही प्रश्नोंके करने वालोंमें से एक समाजीका दृष्टान्त है कि समाजी महाशय अपने मृत पिता के श्राद्ध की तिथि से एक दिन पहिले एक सनातनधर्मी पण्डित जी के पास गये और जाकर पण्डित जी से कहा कि कल हमारे पिता का श्राद्ध दिन है परन्तु हमारे पिता को एक तोला अफीम प्रातःकाल नित्य खाने का अभ्यास था अब उनको अफीमके बिना बड़ा दुःख होगा इस से हम कल के लिये आप को निमन्त्रित

करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि प्रातःकाल तो आप एक तोला अ-
फीम का भोग लगा लीजिये और मध्यान्ह में हलुआ पूरी उड़ाइये
पाठकवर्ग समाजीका अभिप्राय वास्तव में पितृ श्राद्ध करनेका नहीं
था किन्तु ऐसी शास्त्रमर्यादासे विरुद्ध व्यर्थ बातोंके द्वारा पण्डित
जी के उपहास का अभिप्राय था। इस बात को पण्डित जी भी
समझते थे। पण्डित जी ने कहा कि यदि आपका यह अभिप्राय है
कि आपके पिता जो कुछ खाते व काम करते थे वे सभी काम हम
को कर्त्तव्य हैं तब अफीम सहित आपका निमन्त्रण हमें स्वीकार है
परन्तु आज रात को आपकी माता हमारी सेवा वैसे ही करें जैसे
आपके पिता की सेवा करती थीं, क्योंकि पिता के कर्त्तव्य कामोंके
प्रतिनिधि मानकर आप हम को अफीम खिलाना जैसे चाहते हैं वैसे
ही सेवा भी है। इस बात को सुनकर समाजी महाशय बहुत बिगड़े
पण्डित जी को सैकड़ों गालियां दीं, पण्डितजी सबका सहन करते
गए। फिर समाजी बाबूने कहा कि हम इन पोप जी पर मानहानि
का दावा करेंगे इनने हमको बहुत कड़ी गाली दी है, इन पर अवश्य
नालिश हो सकती है। ऐसा सुनकर शान्ति पूर्वक गम्भीरता से पं०
जी बोले कि बाबू साहब! कृपा कर हमारी भी बात सुनलीजिये कि
यदि आप नालिश करसकते हैं तो आपसे भी पहिले नम्बर हमारी
नालिश आप पर होसकती है क्योंकि आप अफीम खिलाकर हमको
मार डालना चाहते हैं इससे हमारा अभियोग आप पर बड़े समारोह
से चलेगा यदि आप अभियोग चलाने की धमकी देते हैं तो अवश्य
चलाइये। हमें स्वीकार है आप भी जान लेंगे कि किस पर अधिक
अपराध लगता है।

ऐसा कथन पं० जी का सुनकर बाबू साहबको कुछ होश आया
और वे जान गये कि वास्तव में अभियोग चलने पर विशेष अपराधी
हमीं ठहरेंगे इस कारण ठंडे पड़ गये। आगे जिन २ समाजियों ने
यह वृत्तान्त सुना उन सब ने कान पकड़ा कि ऐसा निमन्त्रण वा
आक्षेप किसी पर नहीं करना चाहिये और आगे को ऐसे प्रश्न भी

नहीं करेंगे। इस दृष्टान्त से पाठकों को ज्ञात होगया होगा कि ऊपर लिखे प्रश्न का उत्तर हो गया। पीछे शान्त गम्भीर भाव से उन्हीं प॰ण्डित जी ने (जिनसे अफीम खाने पर बाबू से विवाद होगया था) उक्त समाजी बाबू जी की ओर संकेत करके कहा कि महाशय ! कृपाकर सुनिये। श्रुति स्मृति पुराणोंको प्रामाणिक मानने वाले आ॰स्तिकवृन्द का मन्तव्य वा अटल सिद्धान्त यह है कि वेदादि शास्त्रोक्त विधिवाक्य ही धर्म का लक्षण है। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनिने कहा है कि—

शब्दप्रमाणका वयं यच्छब्द आह तदस्माकंप्रमाणम् ॥

हम लोग शब्द प्रमाण को मानने वाले होनेसे आस्तिक हैं जो जो कुछ शास्त्र में लिखा है वह हम को प्रमाण है। श्राद्ध पितृ पूजन पिंडदान ब्राह्मणोंको भोजन कराना जो २ पदार्थ ब्राह्मणों को जिमाना चाहिये सो भी सब लिखा है उसको हम यथावत् मानते हैं परन्तु ऐसा कहीं नहीं लिखा कि किसी का पिता मद्य वा अफीम वा भांग पीता खाता रहा हो तो उसके श्राद्ध में मद्यपानादि कराना चाहिये और यह भी नहीं लिखा कि मद्य भांग अफीम आदिसे उसकी तृप्ति होती है इससे ब्राह्मणों को अफीम आदि खिलाना चाहिये। यदि ऐसा कहीं लिखा हो तो बाबू जी ! आपही कोई प्रमाण श्रुति स्मृति का दि॰खाइये। जब शास्त्र की आज्ञानुसार हमलोग श्राद्धादिकर्म करते मा॰नते हैं और शास्त्रमें वैसा कहीं लिखा नहीं तब हमलोग अफीम आदि का खवाना पिलाना शास्त्र की आज्ञा से विरुद्ध होने पर क्योंकर मान सकते हैं ? अर्थात् कदापि नहीं। और समाजी महाशय को यह भी शोचना चाहिये कि अफीम आदि भौतिक पदार्थ हैं उनका अभ्या॰स वा दुर्व्यसन जिस भौतिक शरीर को होगया था वह पञ्च॰भूतों में मिलगया अब नयी योनि नये शरीर में वही अभ्यास नहीं रह सकता तथा यह भी शोचनीय है कि नशा-सम्बन्धी पदार्थों से नशेबाजों की तृप्ति कदापि नहीं होती किन्तु तमोगुणसे चेतनशक्ति आच्छन्न होजाती दब जाती है इसका नाम तृप्ति कदापि नहीं हो स॰कता। इसलिये यह प्रश्न शास्त्र मर्यादासे विरुद्ध बेसमझी का भी है॥

प्रश्न २७-अमावस्या कृष्णपक्ष वा दक्षिणायनमें ही क्यों पितरोंके श्राद्ध किये जाते हैं? और दूसरे दिनोंमें क्या उनको भूख नहीं लगती?

उत्तर २७-इसका उत्तर संक्षेप से यह है कि ऊपर लिखे प्रमाण विचार के अनुसार श्राद्ध के काल भी शास्त्रोक्त लिये जाते हैं। यदि तुम लोग स्वयं प्रातःकाल होम करना मानते हो तो बताओ कि अन्य २ दिन रात्रि के अंशोंमें होम करना क्यों नहीं मानते, क्या अन्य समय होम की आवश्यकता नहीं है। दक्षिणायन में ही श्राद्ध करे ऐसा कहीं नहीं लिखा तब दक्षिणायन का प्रश्न ही मिथ्या है। अमावास्या में विशेष कर पिण्ड पितृयज्ञ वा पार्वणश्राद्ध करनेका विधान इस लिये किया है कि पितरों का एक दिन रात मानुषी एक मास का मन्वादि महर्षियों ने माना है उसमें कृष्णपक्ष दिन और शुक्लपक्ष रात्रि है जैसे मनुष्यों को रात्रि में भोजन करने की आवश्यकता नहीं वैसे ही शुक्लपक्ष रूप रात्रि में पितरों को भोजन की आवश्यकता नहीं होती, प्रत्येक अमावास्याको दिया पिण्डदान रूप भोजन पितरों के प्रत्येक दिन में एकवार उनको प्राप्त होजाता है। जिन लोगों के पितर ड्राइवर अंगरेज आदि हैं उनको अवश्य चार पांच वार भोजन देना चाहिये प्रतिदिन एकवार का भोजन सात्त्विक है बार २ खाना लड़कपन है॥

प्रश्न २८-दक्षिणायन भी उत्तरध्रुव के लोगों के लिये रात्रि है तो क्या वहांके लिये श्राद्ध आधीरात्रिमें खाये जाते हैं अथवा वहां के शीतार्त्त पुरुषों के लिये यहां की खीर पूड़ी काम आते हैं? ॥

उत्तर २८-हम पहिले समाधानों में पितृयोनि और पितृलोकका वेद प्रमाणानुसार ठीक २ पता बता चुके हैं उन्हीं पितरों के लिये हम श्राद्ध करते हैं। उत्तर ध्रुव के लोगों में श्राद्ध न करने मानने वालों के पितर जाते हैं उनके लिये समाजी लोग दुःख मानें हमारे पितर श्राद्ध के अवलम्ब से पितृलोक रूप स्वर्गमें जाते हैं उत्तर ध्रुव में नहीं। शेषांशका उत्तर पहिले में आगया है॥

प्रश्न २९-ठंडी के देशोंमें ठंडीके समय ही सेवा करना जरूरी प्रतीत होता है और अगर यह ठीक नहीं तो गर्म ऋतु में मृतकों के श्राद्धकी कल्पना कहां से आई ॥

उत्तर २९-यह प्रश्न सर्वथा ही वे समझी का है गर्म ऋतुमें ही श्राद्ध हों शीत में न हों ऐसा लेख जब कहीं नहीं है तथा जब सब ऋतुओं में श्राद्ध किये और माने जाते हैं तब समाजी का लेख सब शास्त्रोंसे और प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी विरुद्ध कौन मानेगा ? ठंड देशोंमें रहने वाले यूरोपादि निवासियों का श्राद्ध समाजी मत के अनुकूल है सो वे ही करें ॥

प्रश्न ३०-पितृ शब्द का अर्थ रक्षक है, और राष्ट्ररक्षक ज्ञानी लोगों को कई शास्त्रकारों ने पितर नाम से माना भी है इसलिये अगर उन रक्षकों की सेवा के प्रतीकार के लिये ही श्राद्ध विधि है तो मृतकों की पूजा का कहां से प्रमाण मिला ? ॥

उत्तर ३०-यद्यपि पितृ शब्द का अर्थ रक्षा करने वाला है तथापि भिन्न २ विषयों में उसी २ प्रकार की रक्षा माननी होगी । समाजी से पूंछना चाहिये कि अपने वृद्ध वा रोगी पिता को रक्षा पुत्र करे तो क्या समाजी उस पुत्रको पिता का पिता मानेंगे वा नहीं ? यदि कुत्ता चोरोंसे धनादि की रक्षा करता है तो क्या समाजी कुत्ते को पितर मानलेंगे ? ज्ञानी कदापि राष्ट्र रक्षक नहीं होते और राष्ट्र रक्षक मनुष्य ज्ञानी नहीं होसकते जिस को ज्ञान प्राप्त होगा वह कदापि राष्ट्ररक्षादि अज्ञान के कामोंमें नहीं फंसेगा । इसीसे राष्ट्ररक्षकों को किसीने ज्ञानी माना भी नहीं इस कारण समाजी का उक्त लेख वेद विरुद्ध है । वेदादि सभी शास्त्रों में श्राद्ध विधि स्पष्टतया मृतक मनुष्य के लिये लिखा है तब समाजी से पूंछा जा सकता है कि जीवित मनुष्य के लिये श्राद्ध करने का प्रमाण कहां से मिला ? जीवित मनुष्य के लिये श्राद्ध करने का कहीं एक भी प्रमाण नहीं है जैसे कोई मरेहुए मनुष्यों का विवाह होना सिद्ध करे वैसे ही जीवितों का श्राद्ध जानो ॥

प्रश्न ३१—क्या चारों वेदों में कहीं भी मृतक श्राद्ध व सपिण्डी करण की विधि वा शब्द लिखा है ? यदि नहीं तो इस कर्म को वेदानुकूल क्यों मानते हो ? ॥

उत्तर ३१—क्या चारों वेद स्मृति पुराणादि किसी में जीवित श्राद्धादि लिखा है। यदि नहीं लिखा तो ऐसे महा मिथ्या मनगढ़न्तके विचार क्यों मानते हो ? जब जीवितों का श्राद्ध त्रिकाल में कभी हो ही नहीं सकता तो मृत पुरुषों का श्राद्ध सबमें लिखा ही है। अग्निष्वात्त अग्निदग्ध पितर श्राद्ध संबन्धी वेद मन्त्रों में स्पष्ट लिखे हैं जिनका अग्निमें दाह कर्म हुआ वे ही अग्निष्वात्त वा अग्निदग्ध कहाते हैं मरने के बाद ही दाह कर्म होता है इत्यादि अनेक प्रमाणों से मृतक निमित्त श्राद्ध वेद से सिद्ध हो चुका है। और समाजी के लिखने से स्पष्ट सिद्ध है कि जो वेद में लिखा है वही वेदानुकूल है और जो नहीं लिखा वह सब वेदविरुद्ध है ऐसी दशा में परमेश्वर शब्द वेद में दिखाना चाहिये अन्यथा परमेश्वरको वेदविरुद्ध मानो। समाजियों के मनगढ़न्त के मत में सैकड़ों मन्तव्यों को वे लोग वेद में न दिखा सकने पर भी हठपूर्वक मानते हैं और मिथ्या दावा करते हैं कि हम वेदमतानुयायी हैं परन्तु हम लोग तो कोई बात वेद में लिखी न होने पर भी शिष्ट प्रमाणित स्मृति पुराण प्रतिपाद्य अनेक मन्तव्यों को (असति ह्यनुमानम्) प्रमाण के अनुसार वेदानुकूल मानते हैं इस से वेदविरुद्धता का कथन सब समाजी मत में रह गया। यद्यपि श्राद्ध शब्द समाजियों के माने हुए थोड़े से वेद में नहीं हैं, तथापि जब ११३१ शाखायें वेद ही हैं तो उन सबमें श्राद्ध शब्द भी अवश्य मिलेगा तथा श्रद्धा शब्द जब समाजी वेदमें भी विद्यमान है तब सूत का नाम होने पर भी कोई कहे कि वस्त्र नाम नहीं वैसाही कथन श्राद्ध विषय में जानो जहां कारण है वहां कार्य का होना स्वतः सिद्ध है वेद सद्वादपरक है कार्य सब असत् है इससे श्रद्धा शब्द ही श्राद्ध का मूल कारण है।

३२ वां प्रश्न वही निमि ऋषि के पुत्र विषय में है जिसका समाधान हम पांचवें प्रश्न के समाधान में सम्यक् प्रकार लिख चुके हैं

वहां पांचवा प्रश्न महाभारत के नाम से था यहां वराहपुराणका नाम है दोनों में बात एक ही है जिस में समाजी ने छल से कुछ का कुछ उलटा मतलब लगा लिया है महाभारत और वराहपुराणादि सब ग्रन्थों में श्राद्ध को ठीक २ माना है खण्डन कहीं नहीं किया इस से समाजी की मिथ्या बात किसी को मन्तव्य नहीं है ॥

प्रश्न ३३—कृष्णपक्ष को पितरों का दिन मानने वाले बतावें कि यदि किसी का क्षयाह शुक्ल में हो तो उसका उस दिन श्राद्ध करना पितरों को रात्रि में जगाकर तंग करना नहीं तो क्या है? ॥

उत्तर ३३—कृष्णपक्ष को पितरों का दिन मानना शास्त्र प्रमाण के अनुकूल है। शुक्लपक्षमें किसीका क्षयाह श्राद्ध हो तो कोई दोष नहीं वह लेख अपवाद रूप से ठीक है क्योंकि अपवाद के अंश में उत्सर्ग लक्षणकी प्रवृत्ति नहीं होती शुक्लपक्षमें श्राद्ध न होना उत्सर्ग है और मरण के दिन क्षयाह श्राद्ध करे यह अपवाद है शुक्लमें क्षयाह अवश्य माना जायगा। अपवाद से उत्सर्ग की कुछ हानि भी नहीं होती। अर्द्धरात्रिके समय भोजन निषिद्ध होने पर भी जन्माष्टमी आदि के दिन विशेष विहित होने से अपवाद रूप से अवश्य कर्त्तव्य है और पुण्य धर्मका हेतु है। सनातनधर्मियों के पितर कदापि तंग नहीं होते किन्तु वे लोग दिव्य दृष्टि होने से जानते हैं कि क्षयाह श्राद्ध वेदादि शास्त्रों में उसी दिन कर्त्तव्य लिखा है शास्त्रानुकूल किया ही हमको प्राप्त होगा इसलिये वे सब लोग क्षयाह श्राद्ध के दिन हमारे शुक्लपक्ष रूप अपनी रात्रि के उन्हीं घंटोंमें सम्मिलित होकर पितृलोक में सभा करते उत्सव मानते भूमिलोकस्थ अपने अपने पुत्रादिको आशीर्वाद धन्यवाद देते हैं और उन लोगोंकी बुद्धि पर शोक प्रकाशित करते हैं कि जिन्होंने श्राद्धके विरोधी बनकर अपने पितरों को अधोगति में गिराया। जिसका विवाह होता है वह रात्रिमें जागने पर भी तंग नहीं होता किन्तु उत्सव दिन मानता है वैसे ही पितर भी उत्सव मानते हैं ॥

प्रश्न—३४—प्राचीन समय में जब ब्राह्मणादि द्विज संन्यासी के

लिये कर्म की आवश्यकता नहीं फिर क्या यह सिद्ध नहीं होता कि मृतकश्राद्ध शूद्र कर्म ही है।

उत्तर ३४–यदि समाजी के मतानुसार शूद्र के लिये मृतक श्राद्ध सिद्ध हो तो भी एक अंशमें समाजी ने अपना ही खण्डन कर डाला अपने पग में कुल्हाड़ी मारली न ? क्योंकि शूद्र के लिये मृतक श्राद्ध समाजी ने मान लिया। हमारा मन्तव्य तो यह है कि ऐसा समय न कभी हुआ न होगा कि जब सभी ब्राह्मणादि संन्यासी हो सकें। जितने लोग संन्यास लेते थे वा लेंगे उनके संन्यास की भी चार कक्षा हैं उनमें तीन कक्षाके लिये तो श्राद्धकी आवश्यकता है, चतुर्थ परमहंस कक्षा में कोई विरला पहुंच पाता है उसके लिये भी श्राद्ध का निषेध नहीं है इस कारण सब विद्वानों में नित्य नैमित्तिक काम्य श्राद्ध सदा सिद्ध ही हैं।

प्रश्न ३५–भागवत माहात्म्यमें लिखा है कि गोकर्ण के गयाश्राद्ध कराने पर भी धुन्धुकारीकी मुक्ति न हुई (गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति) फिर गया श्राद्ध क्यों किये जाते हैं ?॥

उत्तर ३५–हे समाजी ! तुम्हारे प्रश्न वास्तव में वे समझी के हैं सुनो ! यदि छोटी अदालतों में किसी भी कारण किसी प्रार्थी का निवेदन न सुना जाय तो क्या वे सब अदालतें व्यर्थ हो जाती हैं ? जब सैकड़ों वादी प्रतिवादियों के अभियोगों का फैसला होता है तब वे सभी न्यायालय सार्थक हैं वैसे ही गयाश्राद्ध से सहस्रों का कल्याण होता है इससे वह सार्थक है। धुन्धुकारी ने यह कहा कि सैकड़ों गया श्राद्धों से भी मेरी मुक्ति न होगी किन्तु यह नहीं कहा कि गयाश्राद्धसे किसीकी मुक्ति न होगी। मेरी न होना कहनेसे अन्यों की मुक्ति होना सिद्ध है। धुन्धुकारीका मोक्ष भगवद्भक्तिसे होने योग्य था यह भागवत माहात्म्यका अभिप्राय अर्थवाद रूप है। पाठक ! लाहौर वाले समाजी के सब प्रश्नोंका उत्तर यहां तक पूरा हो गया।

११–प्रश्न–श्राद्धमें जो २ पदार्थ दिये जाते हैं यदि वे उन २ योनियों के (जिन २ को जीवात्मा पाचुके हैं) अनुकूल नहीं हैं तो पुत्र

आदिके दिये श्राद्धगत पदार्थ व्यर्थ हैं वा नहीं ? यदि कालान्तर के लिये सार्थक माने जावें तो संप्रति वे क्या खाते पीते हैं ? क्योंकि विना श्राद्ध उन्हें भूखों ही मरना है, यदि निज कर्मानुसार भोजन पाते हैं तो श्राद्ध करना व्यर्थ है ? ॥

उत्तर ११—यद्यपि इन सभी प्रश्नोंके उत्तर पहिले समाधानों में आचुके हैं तथापि हम सक्षेपसे फिर भी समाधान लिखेंगे। हम पहिले भी लिख चुके हैं कि स्मृतिकार ऋषियोंने श्राद्धमें जो २ पदार्थ ब्राह्मणोंको देने वा भोजन कराने लिखे हैं उन्हीं को हम सनातनधर्मी लोग श्राद्धकाल में देते हैं। यदि वे पदार्थ उनके योग्य न होते तो ऋषि लोग अवश्य लिखदेते कि वे पदार्थ उन मृत पितरों के योग्य नहीं हैं इससे मत दो सो ऐसा न लिखकर ऋषियोंने लिखा है कि वे ही अन्नादि पदार्थ मृत पुरुषको यदि देवयोनिमें जन्म पाया होतो अमृत रूपमें परिणत होकर मिलते हैं पितृ योनिमें स्वधारूप होके मिलते, मनुष्य योनिमें अन्नरूप होकर प्राप्त होते और पश्वादि योनियों में तृण घासादि रूप होकर प्राप्त होते हैं। इससे वे पदार्थ सर्वथा मृत प्राणियोंके अनुकूल होने सिद्ध हैं। अब प्रश्नकर्त्ता समाजीसे प्रष्टव्य यह है कि वह वेदादि किसी शास्त्रका प्रमाण दें कि इस प्रमाणसे वे पदार्थ मृत प्राणियोंके अनुकूल नहीं हैं। और हम तो एक उत्तर यह भी पहिले लिख चुके हैं कि (असून्, पितृभ्यो गमयाञ्चकार) जिन मृत प्राणियोंका विधि और श्रद्धाके साथ मरणानन्तर पुत्रादि लोग श्राद्धादि कर्म करते हैं उनको वेदप्रमाणके अनुसार पितृयोनिमें स्वर्ग प्राप्त होता है किन्तु मनुष्य पशु कीट पतङ्गादि योनियां श्राद्धके विरोधी समाजी आदिके पितरोंके लिये ही हैं। तथापि किसी कारण अन्य योनियोंमें सनातनधर्मीका जन्म हो जाय तो उसको वही अन्न अनुकूल होकर उस २ योनिके अनुसार प्राप्त होगा। संसारमें मनुष्योंके सुख साधन सामान्यतया भोजन वस्त्र दो हैं परन्तु भोजन वस्त्र मिलने पर समाजी लोग उतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि रुपया पैसा मिलने पर प्रसन्न होते हैं। किसी प्रकार रुपये का चूर्ण

करके कोई समाजी खावे तो न क्षुधा की निवृत्ति होगी और न कुछ स्वाद मिलेगा वा यों कहो कि खाया भी न जायगा तथा रुपया पैसा शरीर, में लपेटने पर शीत भी निवृत्त नहीं होगा। ऐसी दशा में समाजी लोग रुपया लेनेसे इनकार क्यों नहीं करते ? वा ऐसा ही प्रश्न क्यों नहीं करते कि रुपया पैसा मनुष्य के भोजन वस्त्र के योग्य न होने से अनुकूल नहीं तो व्यर्थ हैं वा नहीं ? यदि कहैं कि रुपये से भोजन वस्त्रादि सभी प्राप्त हो जाता है तो वही समाधान यहां भी जानो कि जैसे रुपयेके बदलेमें अन्न वस्त्रादि अपेक्षित सामान तुमको प्राप्त हो जाता है वैसे ही श्राद्ध में दिये पदार्थों के बदले में मृत प्राणियों को योनियों के अनुकूल पदार्थ उन २ को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि लोक में भी यही व्यवहार हैं कि मूल्यवान् वस्तु किसी को कुछ भी मिले उसके बदलेमें अपना अभीष्ट वस्तु सब कोई लेसकता है। हम यह भी पहिले लिखचुके हैं कि भूंखों मरनेसे बचाने मात्र प्रयोजनसे श्राद्ध नहीं किया जाता किन्तु अपने मृत पितादिको स्वर्ग मोक्षदि तक उच्च २ दशा में पहुंचाने के लिये श्राद्ध किया जाता है। और हम यह भी लिख चुके हैं कि निज कर्मानुसार भोजनादि जन्य उत्तम सुख मृत पितरों को प्राप्त होने पर भी उनको श्राद्ध तर्पणादि द्वारा तृप्त करनेकी आवश्यकता ऐसे ही माननी चाहिये कि जैसे समृद्धि सम्पन्न होनेपर भी गुरु व माता पितादिकी सेवा करना शिष्य और पुत्रादिका परम कर्त्तव्य धर्म है ऐसा होने पर ही वे सुशिष्य वा सुपुत्र कहाते हैं और ऐसा होने पर ही गुरु वा माता पितादि संतुष्ट होकर आशीर्वाद देते हैं। क्या समाजी लोगों के गुरु माता पिता जब भूंखों मरने लगते हैं तभी उनको भोजनादि कराना नियत है ? और गुरु आदि को अपने कर्मानुसार भोजनादि मिलने पर क्या समाजी मत में गुरु सेवादि कर्त्तव्य धर्म नहीं ? इसका उत्तर समाजी प्रश्नकर्त्ता को देना चाहिये ॥

प्रश्न २०-श्राद्ध करने का अधिकार कौन २ जातियोंको है ? और जिन २ जातियों को श्राद्धाधिकार माना जावे उन २ जातियों के अनुकूल वे २ पदार्थ श्राद्ध में क्यों नहीं दिये जाते ? ॥

उत्तर २०–श्राद्ध करने का अधिकार सभी जातियों को है, ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा चर्मकार चाण्डालादि सभी अन्त्यज जातियों और असुर राक्षसादि जातियोंको भी श्राद्ध करनेका अधिकार है। द्विज ब्राह्मणादि को वेद मन्त्रों से श्राद्ध करने का अधिकार महर्षियों ने बताया है और शूद्रादि अनुपनीत असंस्कृत जातियों को नाम मन्त्रों से वा स्मार्त्त पौराणिक मन्त्रों से श्राद्ध करने का अधिकार बताया है वैसा ही सब आस्तिक लोग मानते हैं और यह भी माना जाता है कि दूध खोया, मलाई, घृत, मधु पायस आदि अनेक उत्तम पदार्थ सभी जातियों के अनुकूल हैं यव चावल आदि अन्न भी सब के अनुकूल हैं इन्हीं खोया आदिके पिण्ड पितरों को दिये जाते हैं। अब प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशयसे पाठकगणोंको पूछना चाहिये कि खीर खोया दूध मलाई मिश्री आदि किस २ जाति के प्रतिकूल हैं कौन २ जाति के मनुष्य इन पदार्थों को ग्रहण नहीं करते ? और उक्त पदार्थ किस २ जाति के अनुकूल हैं यदि सभी के अनुकूल कहो तो तुम्हारे प्रश्न का स्वयं खण्डन हो जायगा। और यदि यह अभिप्राय हो कि मांसाहारिणी जातियों के अनुकूल मांस के पिण्ड क्यों नहीं दिये जाते ? तो उत्तर यह है कि मांसभक्षण सर्वसाधारण के लिये निषिद्ध होने पर भी जो लोग शास्त्रकी आज्ञा को न मानकर रागवश मांसभक्षण करते हैं उन्हींके लिये तो परिसंख्यारूपसे मांसके पिण्डों का प्रसङ्ग मन्वादि महर्षियोंने दिखाया है। जैसे आर्यसमाजियों में भी एक मांसपार्टी है ऐसे लोगों को ही मन्वादि के कहे मांस के पिण्डदान करने का अधिकार है। मांसाहारियों के मांसभक्षण वा मांसपिण्डों का अपराध महर्षियों पर वा हम सनातनधर्मानुयायियों पर कुछ भी नहीं आता क्योंकि कोई कहता नहीं कि तुम मांसभक्षण करो किन्तु निषेध को न मान कर हठ पूर्वक रागवश जो लोग मांस भक्षण करते हैं इस से अपराध उन्हीं पर है। हां इतना तो हम अवश्य कहते हैं कि श्राद्धादि न करने वाले तथा निरन्तर मांस खाने वाले मनुष्यों से वे अच्छे हैं जो मन्वादिके लेखानुसार देवपित्रर्थ ही मांस का विनियोग करते हैं परन्तु मांसके सर्वथा त्यागी होकर खीर

खोयादिके पिण्डदान द्वारा श्राद्धादि करने वालोंसे वे मांसके पिण्ड देने वाले निकृष्ट भी माने जावेंगे। इससे मांसाहारी समाजियों को भी अपने अनुकूल पदार्थों से श्राद्ध करने का अधिकार है।

प्रश्न २१–यदि प्राणीकी तृप्ति होनी अभीष्ट है तो मद्य मांसाहारी गंजेरी भंगेड़ी अफीमची आदि के लिये मद्य, मांस, गांजा, भांग, अफीम आदि ही देना उचित होगा अन्य पदार्थों से वे कैसे तृप्त होते होंगे ? (उन्हें तो अमल बिन तलब अवश्य लगती होगी ?) ॥

उत्तर २१—इस प्रश्न का उत्तर दृष्टान्त सहित साङ्गोपाङ्ग सम्यक् छप चुका है। प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशय से निवेदन है कि वे उक्त समाधान को आंखें खोलकर पढ़ें समझें और युक्ति-प्रमाणानुसार सब महाशय इस बात पर विशेष ध्यान देवें कि तृप्ति पदका खास अर्थ क्या है ? यद्यपि सामान्य गौणार्थ से अन्न के द्वारा भी तृप्ति कही और मानी जाती है तथापि मुख्यकर जलका गुण तृप्ति है क्योंकि तर्पण एक कर्म है वह जलके द्वारा होता है उस तर्पण का यौगिकार्थ (जिससे पितरोंकी तृप्ति हो वह तर्पण कहाता) है। इसी लिये दानधर्म के अर्थवाद में अ० ४ में मनुजी ने लिखा है कि (वारिदस्तृप्तिमाप्नोति) प्याऊ आदि द्वारा जलदान करने वालेको तृप्तिफल प्राप्त होता है। इस प्रकार जब जल का गुण तृप्ति है तब प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशय से यह पूछना चाहिये कि यदि मद्य गांजा भांगादि सेवियों की तृप्ति उसी से हो जाती है तो वे लोग अन्यों से भी अधिक भोजन क्यों करते हैं ? जब मद्यादि से उन२ की तृप्ति होती ही नहीं तब उन की तृप्ति के लिये मद्यादि देने का प्रश्न भी निरर्थक हो गया। द्वितीय जिस शरीर ने मद्यादि का अभ्यास किया था वह यहीं पञ्चभूतोंमें मिलगया अब जन्मान्तरमें जो शरीर मिला है वह यदि कर्मानुसार पशुयोनिके अन्तर्गत है तो समाजी को बताना चाहिये कि पशु पक्षी आदि को मद्यादि पीने की उत्कट इच्छा होती है या नहीं ? ॥

२२ प्रश्न– जिन जातियों का श्राद्धाधिकार नहीं है उन के पितर

दूसरोंसे छीन झपटकर खाते वा भूंखे रहते हैं ? उन बिचारोंके दिन कैसे व्यतीत होते होंगे ?

उत्तर २२—ऊपर बीसवें प्रश्नके साथ यह प्रश्न पुनरुक्तदोषग्रस्त है इस लिये स्वयं खण्डित हो गया । जब हम लिख चुके हैं कि श्राद्ध करने का अधिकार सभी जातियों को है तथापि समाजी मत में प्रविष्ट जो २ ब्राह्मणादि लोग अपने पितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं करते उनके पितर अपने २ पुत्रों को कोसते गालियां दिया करते हैं भोजनादि मिलने की आशा न होने से दुःखित भी होते हैं तथापि भूंखों नहीं मरने पाते, क्योंकि सनातनधर्मियों के पितरों के पास पुष्कल भोजनादि सामान पहुंच जाता है और सनातनधर्मी पितर दयालुभी होते हैं इससे अपने भोजनमेंसे थोड़ा २ देकर भूंखों मरने वाले समाजी आदि श्राद्धविरोधियों के पितरों की भी तृप्ति कर देते हैं शेष विचार बीसवें प्रश्न के समाधान में देखो । इससे जिनके पुत्रादि श्राद्धनहीं करते उन को भी छीन झपट करने करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती तो भी अन्यों का मुख देखने पड़ने से वे लोग दुःखित रहते हैं ॥

प्रश्न २३—श्राद्ध करने का कोई नियत देश है वा सर्वदेश है यदि सर्व देश है तो गया में क्या विशेषता है ? । यदि कोई नियत देश है तो जिन में श्राद्धाधिकार नहीं है वहां के पितर भूखे प्यासे मरते वा दूसरे मुल्कोंको धावा लगाते होंगे या दूसरे पितरों पर डाका डालते होंगे क्योंकि पेट पापी है चाहैं सो करावे धरावे ! (बुभुक्षितः किं न करोति पापम्) भूंखा क्या २ पाप नहीं करता है ? ॥

उत्तर २३—वास्तवमें यह प्रश्न अत्यन्त वेसमझीसे किया गया है क्योंकि बीसवें प्रश्नमें किये जाति विषयक प्रश्नमें ही यह बात आजाती है कि भूमण्डलके सब प्रदेशोंमें ही प्रायः सब मनुष्य जातियों का निवास है यदि सब जातियोंके मनुष्योंको श्राद्धका अधिकारमान लिया गया तब सब देशोंमें श्राद्ध करना सिद्ध हो गया । विशेष कर

इस प्रश्नमें निर्युक्तिना यह है कि जो २ पदार्थ वा काम सामान्यतया सब देशोंमें व्याप्त हैं वे ही कहीं २ विशेषरूपसे भी विद्यमान हैं जिस के असंख्य उदाहरण संसारमें विद्यमान हैं। जैसे अग्नि वायु आदि पदार्थ सर्वत्र व्याप्त हैं परन्तु ज्वालामुखी पर्वतादि स्थानों में अग्नि विशेष रूप से आविर्भूत है, सब पृथिवी में सुवर्णादि निकल सकते हैं पर जहां थोड़े परिश्रम से सुवर्ण अधिक निकल सकता है वहां विशेष कर सुवर्ण माना जाता है। इसी प्रकार सब काम सब स्थानों में हो सकने पर भी जो काम जिस प्रदेशमे उचित साधन मिलने से वा विशेष फलीभूत होनेकी सम्भावना से अच्छे प्रकार हो सकते हैं वहां वे काम विशेष कर किये जाते हैं। इसीके अनुसार श्राद्ध का सर्वदेश होने पर भी गयामें श्राद्ध की विशेषता यह है कि (गयशिरसीत्यौर्णवाभः) निरुक्त ग्रन्थमें लिखा है और्णवाभ आचार्य कहते मानते हैं कि गय नामक असुरके शिर पर विष्णु भगवान्‌ने एक पग रक्खा था जिससे पिचल कर वह असुर जहां मर गया वहीं विष्णु पदका चिन्ह अबतक गयामें माना जाता है। गय नामक असुर के कारण तीर्थका नाम गया नगरी हो गया। जो लोग गया श्राद्ध करने जाते हैं वे अब भी विष्णुपद पर पिण्डदान किया करते हैं। गयामें श्राद्धका अधिक वा विशेष फल होना वेदादि शास्त्रसम्मत है और वहां विशेष फल होनेपर भी सर्वत्रका सामान्य श्राद्ध खण्डित नहीं होता। जब ऐसे विचारों को समाजी लोग भी मानते और मानने पड़ता है तब श्राद्ध विषयमें वैसी शंका उठानेका हेतु अज्ञान ही सिद्ध है। वास्तवमें किसी न किसी रूपान्तरसे श्राद्ध को संसार की सभी जातियां मानती और करती हैं कोई यवनादि मृतक के स्मारकमें कुछ भोजनादि कंगालों को देते हैं कोई स्मारक चिन्ह पाठशाला कालिज स्कूलादि मृत के नाम से बनवाते हैं। जैसे दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल वा डी० ए० वी० कालेज इत्यादि। यदि कोई पुरुष कहे कि उन मृतकों को भोजन वस्त्रादि पहुंचने के उद्देश से वे लोग स्मारकादि नहीं बनवाते तो वे वैसे

उद्देश से अवश्य श्राद्ध करते । विश्वास वा ज्ञान नास्तिकता के कारण नहीं है इस से यह दोष उन्हीं का है क्योंकि मृत प्राणी से प्रेम होने के कारण सुख पंहुचाने को सभी लोग अच्छा तो अवश्य मानते हैं इसी से मानते हैं दया से करते लिखते हैं कि ईश्वर मृत प्राणी को सद्गति देवे ॥

प्रश्न २४—जीव की जीवती दशा के उत्सव दिनों को छोड़ श्राद्ध के लिये क्षयाह नियत किया गया यह बड़ा असमञ्जस है क्योंकि इस जीव को जब घोर क्लेश का स्मरण आता है तब इसका खाना पीना सब छूट जाता है फिर मरण क्लेश को स्मरण करके जीव रोता होगा वा श्राद्ध पाने की आशा करता और आनन्द मानता होगा ॥

उत्तर २४—इसमें भी प्रश्न कर्त्ता की बड़ी बेसमझी इस लिये है कि आर्यसमाजी लोग स्वा० दयानन्दजीकी जीवित दशाके किसी भी उत्सव दिन में अपने समाजों का उत्सव नहीं करते किन्तु जिस नगरके समाजी महाशय प्रश्न करते हैं उसी इटावा नगर में ठीक दिवाली के दिन समाज का वार्षिकोत्सव किया जाता है उत्सव के समय अनेक प्रकार समाजी लोग आनन्द मानते हैं और दिवाली के उत्सव को स्वा० दयानन्द जी का स्मारक मानते हैं यह वास्तव में स्वा० द० जी का क्षयाह श्राद्ध स्थानी है । इसमें बड़ा असमञ्जस प्रश्नकर्त्ता को क्यों नहीं होता ? । क्योंकि जब स्वा० दयानन्द नाम रूपावच्छिन्न जीवको मरण समय के घोर क्लेश का स्मरण समाजियों के उत्सव द्वारा होता होगा तब क्या स्वा० दयानन्द का खाना पीना नहीं छूट जाता होगा ? और क्या मरण क्लेश स्मरण कर २ स्वा० द० नहीं रोते होंगे ? तथा वैसे भयानक समय में उत्सव मानने वाले समाजियों को क्या गालियां नहीं देते होंगे ? वा आनन्द मानते होंगे । पाठक ? देखिये ? प्रश्न के सब अंश समाजी पर लौट कर ऐसे ही आपड़े जैसे आकाश में फेंकी धूलि फेंकनेवाले पर ही आ पड़ती है ॥

अब हम सनातन धर्मियों के पक्ष में इसका समाधान देखिये सनातन धर्मियों का मन्तव्य वा सिद्धान्त यह है कि—

इन्द्रियार्थेषुवैराग्यमनहङ्कारएवच ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ गीता
अवेक्षेतगतीर्नॄणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरयेचैवपतनं यातनाश्चयमक्षये ॥ २ ॥
विप्रयोगंप्रियैश्चैव संयोगंचतथाऽप्रियैः ।
जरयाचाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ३ ॥
देहादुत्क्रमणंचास्मा-त्पुनर्गर्भेचसम्भवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषुसृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—गीता में कृष्ण भगवान् कहते हैं कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध नाम क इन्द्रियों के विषयोंमें नित्य दोषदर्शी होता हुआ परमार्थी पुरुष चित्तमें वैराग्य उत्पन्न कर अहङ्कार को त्यागे और जन्म मरण वृद्धावस्था तथा रोगसे होनेवाले घोर भयानक दुःख रूप दोषों का बार २ स्मरण द्वारा ध्यान दृष्टि से देखना ज्ञान कहाता है। मनुजी अ० ६ में कहते हैं कि अपने अपने निन्दित बुरे कर्मोंसे होनेवाली नरक भोगादि कर्म गतियोंको, नरक में पतन को, यमराजके इजलास में होनेवाले भयंङ्कर दण्डों को, प्रिय स्त्री पुत्र पौत्रादि से होनेवाले वियोग दुःख को, अप्रिय शत्रु आदि के संयोग से होनेवाले दुःखों को, वृद्धावस्था के दुःखों को और रोग पीड़ाओं को, इस शरीरके छोड़नेमरने के दुःखोंको, फिर गर्भवास में होनेवाले दुःख कों, और सहस्रों प्रकार की दुःखप्राय योनियों में इस जीवके बार २ जन्म धारण के दुःखोंको ध्यान दृष्टि से स्मरण कर कर के बार २ देखा सोचा करे। ऐसा करने से मनुष्य अधर्म से बचकर धर्म में चित्त देकर विषयों में न फंसता हुआ ज्ञान वैराग्य प्राप्त करके मोक्ष का भागी बन सकता है। इसलिये सनातन धर्म के नियमानुसार मृत्यु आदि समय के दुःखोंका बार २ स्मरण करना बड़ा उपयोगी है। श्राद्ध करनेवाला सनातन धर्मी पिता का क्षयाह श्राद्ध करता हुआ सोचता मानता है कि-आज पिताजी की संसारयात्रा पूरी होने का दिन है

है पितः! आप इस अन्नरूप मेरे इस तुच्छ उपहारको स्वीकार करो आप की सद्गति ही मेरी सुगति का हेतु है जिस प्रकार आज के दिन आप ने इस असार संसारको छोड़ा था वैसे ही एक दिन मुझे भी इस सब को छोड़ना अवश्य पड़ेगा इस लिये दयालु आप मुझे अधर्म से बचा कर धर्म में तत्पर होने का वरदान दीजिये। इसी के अनुसार (दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां०) इत्यादि वरदान मांगनेका विचार तृतीयाध्याय के श्राद्ध प्रकरण में मनुजी ने कहा है। अभिप्राय यह है कि मरण दुःख का वार २ स्मरण होना मनुष्य के लिये शास्त्र कारोंकी आज्ञानुसार वड़ा उपकारी है उससे विरुद्ध उलटा समझना यह समाजियों के मतानुसार तो ठीक है क्योंकि जो श्रुति स्मृति आदि शास्त्र से विरुद्ध है उसी का नाम समाजी मत है। हम प्रश्न कर्त्ता समाजी से पूछते हैं कि क्या घोर मरण क्लेश का समाजियों में जिस किसी को जब कभी स्मरण आता है तब क्या खाना पीना सब छूट जाता है?। अर्थात् कदापि नहीं इस से यह बात मिथ्या है सैकड़ों को स्मरण आता है उससे उदासीनता कुछ नहीं होती क्योंकि प्रायः सभी मनुष्यों का चित्त विषयों में आसक्त है इस मरणादि जन्य दुःख का स्मरण उनको विषय वासनासे हटा नहीं पाता परन्तु परमार्थी पुरुषोंको वार २ किया स्मरण ज्ञान वैराग्यका पोषक हो जाता है इसी लिये गीता और मनुस्मृति आदि में मरण दुःखका स्मरण करना लिखा है।

प्रश्न २५,—कन्यागत सूर्यों में मरनेके दिन नियत नहीं किये गये, जो सब जीव इन्हींमें मरें तो फिर श्राद्ध करनेकी क्या विशेषता है?।

उत्तर २५—यह भी प्रश्न अज्ञान ग्रस्त होकर वा मदमत्त होकर लिखा जान पड़ता है। सभी मनुष्य कन्यागत सूर्य्य में मरें, ऐसा जब हो ही नहीं सकता तो मरनेके वे दिन कौन नियत करता? और क्यों करता? यदि असम्भव काम के होने का नियम हो सकता है तो समाजी लोग ही वैसा करके दिखावें। जब सब जीव इन्हीं कन्यागत दिनोंमें नहीं मरते और न मरसकते हैं तब कन्यागतमें श्राद्ध करने की विशेषता प्रश्नकर्त्ता के लेखानुसार भी सिद्ध होगई। जब

रहा सनातन धर्म का मन्तव्य, सो यहां के पूर्वज महर्षियों ने स्पष्ट ही कन्यागत श्राद्धकी विशेषता मानी है पाणिनि मुनिने स्वयं कन्यागत श्राद्ध की विशेषता जानी और मानी थी—

श्राद्धे शरदः । ४ । १२ । श्राद्धेऽभिधेये शरच्छब्दाच्छैषिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति । ऋत्वणोऽपवादः । श्राद्ध इति कर्म न श्रद्धावान् पुरुषोऽनभिधानात् । इति काशिका । शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम् । भक्त्या क्रियमाणं पित्र्यं कर्मेत्यर्थः । श्रद्धावान्पुरुषस्तु न गृह्यतेऽनभिधानात्—इति सिद्धान्तकौमुद्याम् ॥

अर्थ—शरद् शब्द से श्राद्ध अर्थ में शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है । इससे शरद ऋतु नाम कन्यागत सूर्य्यमें होने वाले श्राद्धका शारदिक नाम पड़ता है । भक्ति पूर्वक किया हुआ पितृकर्म यहां श्राद्ध पदका अर्थ लेना है श्रद्धावान् पुरुषका नाम भी श्राद्ध है पर वह शारदिक शब्दसे उक्त न होनेके कारण यहां नहीं लिया जाता—इस से सिद्ध है कि पाणिन्यादि आचार्योंने भी शरद् ऋतुके कन्यागत श्राद्ध में विशेषता मानी है । तथा स्वामी दयानन्दजीने भी प्रमाणकोटिमें परिगणित किये सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थमें लिखा है कि—

ततःशेषाणिकन्याया यान्यहानितुषोडश ।
क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥

अर्थ—कन्याराशिके अन्तिम सोलह दिनोंमें मृत पितरोंके निमित्त जो पिण्डदान वा ब्राह्मणोंको भोजनादि दिया जाता है उससे पितरों की अक्षय तृप्ति होती और श्राद्धकर्त्ताको अग्निष्टोमादि यज्ञ करने के तुल्य फल होता है इस कारण कन्यागत सूर्यके शेष सोलह दिनों में श्रद्धा भक्ति और प्रीति पूर्वक श्राद्ध करना चाहिये ॥

प्रश्न २६—क्षयाह श्राद्धमें पायस खीर देनेसे यदि वर्ष भर पितृजन तृप्त रहते हैं तो बीचमें, (कन्यागत में) उनका श्राद्ध करना उन्हें बीमार बनाना है । ऐसी अवस्था में पितरों को औषध कौन देता

होगा ? बिना औषध पितर बिचारे महा क्लेश भोगते होंगे क्योंकि अजीर्ण रोगका मूल कारण है (अजीर्ण रोगस्य मूलकारणम्) ॥

उत्तर २६-तृप्ति होनेका अर्थ वा अभिप्राय हम पहिले प्रश्नों के समाधान में प्रतिपादन करचुके हैं कि कोई मनुष्य किसी के साथ ऐसा महोपकार करे कि जिसे वह उपकार्य न भूले और बार २ स्मरण करता हुआ 'उपकारक पर सन्तुष्ट प्रसन्न तृप्त रहकर धन्यवाद दिया करे तो ऐसी दशामें क्या उपकृत समाजी का पुनर्वार वही वा अन्य कोई उपकार करे तब समाजी को अजीर्ण हो जाता है ? तब क्या समाजी लोग डाक्टर को बुलाकर दवा किया करते हैं ? स्वा० दयानन्दजीको अनेक लोगों ने बार २ भेंट आदिके रूपसे धन दिया केवल सोलह हजार रु० मरण समय तक स्वा० द० ने रूप पाया था परन्तु चार छः हजार संग्रह होने के पश्चात् अन्य रुपया आने पर स्वा० द० जी को अजीर्ण रोग क्यों नहीं हुआ ? । डी० ए० वी० कालिज लाहौर के लिये ३२ वर्षसे प्रतिवर्ष चन्दा जमा किया जाता है अबतक लाखों रु० हो जाने पर भी अजीर्ण क्यों नहीं होता ? । इसी के अनुसार यहां भी जानना चाहिये कि श्राद्ध एक पुण्य कर्म है उस का पुण्य फल पितरोंको पहुंचता है स्थूलान्न के पिण्ड वा पार्थिवांश के भोज्य स्थूल पदार्थ ब्राह्मण खाया करते हैं उस पुण्यरूप फल से अजीर्ण कैसे होगा ? प्रश्नकर्त्ता समाजी भी जानते हैं कि स्थूलान्नको पितर आकर खाते हैं ऐसा कोई भी नहीं मानता तो अजीर्णका प्रश्न कैसे हो सकता है ? ॥

प्रश्न २७-वर्षा ऋतु आश्विन (क्वार) मास में जब नदी, नाले, तालाब, झील, पोखरे पानीसे लबालब भरे होते हैं तब जल दान-तर्पण करनेकी क्या आवश्यकता है ? और ग्रीष्म ऋतु जेठ वैशाख में जलदान क्यों नहीं करते ? ॥

उत्तर २७-वेद का दम भरने वाले समाजी ने अज्ञानवश वेद से विरुद्ध इस प्रश्नमें लिखा है । चैत्र वैशाख दो मासको वसन्त और आश्विन कार्त्तिक दो मासको शरदृतु रूप में कहा है वैसा ही अर्थ स्वा० दयानन्द जीनेभी किया है । देखो शु० यजु० अ० १३ । २५ । अ० १४ । ६-१५ । १६ ।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू॥

अर्थ-मधु, चैत्र, माधव, वैसाख, वसन्त ऋतु, शुक्र, ज्येष्ठ, शुचि, आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु, नभस्, श्रावण, नभस्य भाद्रपद वर्षा ऋतु और इष आश्विन, ऊर्ज कार्त्तिक शरद् ऋतु कहाते हैं। पाठक! देखें कि समाजी ने वैशाखको ग्रीष्म और आश्विन को वर्षा ऋतु लिखा है सो साफ २ वेदविरुद्ध है क्या आप लोगोंके पूछने पर समाजी इस का उत्तर दे सकेंगे? अर्थात् कदापि नहीं। शोचनेका स्थान है कि जिस समाजी को यह भी बोध नहीं कि किस २ महीने का कौन २ ऋतु होता है वह श्राद्ध जैसे वेदोक्त गम्भीर विषयमें कुतर्करूप प्रश्न-कर्त्ता बने? समाजियोंके लिये लज्जित होनेका स्थान है। आश्विन मासमें नदी, तालाव आदि लवालव नहीं भरते किन्तु प्रायः घटजाते हैं यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। द्वितीय जब कोई ऐसा मानता ही नहीं कि जब सर्वत्र जल सूख जावे तब तर्पण करना उपकारी है न ऐसा किसी शास्त्र में लिखा किन्तु श्राद्ध तर्पण विधायक श्रुति स्मृति पुराणों में सर्वत्र नित्य २ तर्पण करना लिखा है और प्रायः धर्म कर्म के प्रेमी सनातनधर्मी वैसा ही करते भी हैं अर्थात् ज्येष्ठादि सभी महीनों के सभी दिनों में तर्पण कर्त्तव्य है। यदि सर्वसाधारण सनातनधर्मी लोग प्रतिदिन श्राद्ध तर्पण नहीं करते किन्तु कन्यागत में विशेष कर करते हैं तो सर्वदा न करना मनुष्यों का दोष है शास्त्र का नहीं और जो कन्यागत में भी श्राद्ध तर्पण नहीं करते उनसे कन्यागत सूर्य में विशेष मात्र करने वाले भी अच्छे हैं॥

प्रश्न २८-क्या "तृप्यन्ताम् २" कहने से पितरों को जल मिल जाता है? यदि ऐसा हो तो किसान अपने २ पुरोहितों को जल के पास बैठा कर बाजरा मूठी तृप्यन्ताम् २। गेहूं बेझर तृप्यन्ताम् २ कह कर अपने २ खेत क्यों नहीं सहज ही में सींच लिया करते हैं? क्यों वृथा लिंहड़ी डोल पुर चलाते, कुआ बावड़ी बम्बा नहर खुदाते हैं? ॥

उत्तर २८-जब स्वा० दयानन्द जी ने सन् ७५ वाले सत्यार्थ प्रकाश में लिखा छपाया था कि जो २ मर गये हों उनके नाम से तर्पण अवश्य करे और जो २ जीवित हों उनका तर्पण न करे और " ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् ,, इत्यादि तर्पण के वाक्य पहिले से अब तक छपते जाते हैं, तब समाजियों ने दयानन्द जी से क्यों नहीं कहा कि "तृप्यन्ताम् २ ,, कहने से जल मिल जावे तो हम भी वार्षिकोत्सवादि के समय समाजियोंको जल प्याने वाला कोई न रक्खें और एक समाजी जल लेकर बैठ जावे और पृथिवी पर जल गिराता हुआ कहता जावे " सभी नमस्ते तृप्यन्ताम् "। धुना जुलाहे तृप्यन्ताम्। सांप्रतिक सत्यार्थ प्र० में भी (तृप्यन्ताम् २) अब भी छपता है सो क्यों ? और संस्कारविधि में लिखे अनुसार अपसव्य हो दक्षिण को मुख कर (पितरः शुन्धध्वम्) कह कर भूमि पर जल छोड़ने से पितर लोग यदि शुद्ध हो जाते हैं तो समाजी लोग स्नान करना छोड़ दें और एक समाजी दक्षिण को मुख कर पृथिवी पर जल छोड़ता हुआ कहता जावे, मुंशी तुलसी शुन्धध्वम्। शर्मा वर्मा शुन्धध्वम् " इस प्रकार कह २ कर सब को शुद्ध कर लिया करे स्नानादि क्यों कराते हो ? उक्त प्रश्न का हमारे पक्ष में समाधान यह है कि गेंहूं आदि के खेतों के सींचने की रीति लोकसिद्ध है जिस २ रीति से सुभीता देखते हैं वैसा २ सींचने का उपाय कर लिया करते हैं इसमें धर्मशास्त्र वा वेद की आवश्यकता नहीं है परन्तु पितृगण और पितृलोक परोक्ष विषय है परोक्ष विषय में कर्त्तव्य को बताने वाला वेद है। जब हमने मान लिया कि वेद जो कुछ कहता है कि ऐसा करो वही धर्म है तब हमको कुतर्क उठाने की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि वेद के सैकड़ों प्रमाणों द्वारा मृत पुरुषों के निमित्त श्राद्ध तर्पण करना सिद्ध हो चुका है। वास्तव में वेदों के नाम का बहाना करते हुए आ० सामाजियों द्वारा संसार को धोखा दिया जा रहा है कि हम वेद को मानते हैं। सत्य बात यह है कि वेद के मन्तव्य विषयों का खण्डन द्वारा वेदका मूलोच्छेद

खण्डन आर्यसमाज द्वारा हो रहा है इसलिये अब हम उक्त प्रश्नों का समाधान यहीं समाप्त करते हैं ॥

इटावा वाले प्रश्नों के ट्रैक्ट के अन्त में पब्लिशर ने छपाया है कि "जीते माता पिता को अन्न जलादि बिन तरसाते और मरों के सुखार्थ पिण्ड भराते हैं" इत्यादि का उत्तर यह है कि सनातनधर्म का मन्तव्य है कि जीवित माता पिताकी देवता बुद्धिसे श्रद्धा भक्ति के सहित सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये तदनुसार अनेक सुपुत्र करते भी हैं और मरणानन्तर भी श्राद्ध तर्पण द्वारा उनको सुख पहुंचाते हैं। अब रहे कोई २ ऐसे भी कुपुत्र होने सम्भव हैं जो जीवित माता पिता को दुःख दें ता यह उनका दोष है सनातनधर्म का दोष नहीं हैं जब सनातन धर्मियों में ऐसा कोई नियम वा लेख ही नहीं है कि जीवित माता पिताको अन्न जलादि से तृप्त न करें किन्तु सब प्रकार से माता पितादि को सुख पहुंचाने की स्पष्ट आज्ञा है। तब ऐसा लिखना सरासर अज्ञान है। आर्यसमाजियोंमें भी माता पिता की सेवा शुश्रूषा का नियम नहीं सैकड़ों लड़के समाजी बन-कर अपने २ सनातनधर्मी माता पिताको अज्ञानी मूर्ख पोपजी आदि शब्दों से तंग करते हैं उचित सेवा करने वाला कोई भी समाजी नहीं दीखता। अन्तमें एक बात यह भी लिखी है कि पितृ शब्दका अर्थ जन्मदाता वा विद्यादाता है सो यह भी व्याकरण कोशादिसे विरुद्ध है क्योंकि श्राद्धादि पितृयज्ञ प्रकरण में यह अर्थ नहीं घट स-कता वहां सम्बन्धी मृत मनुष्य पुत्रादि तक पितर कहाते हैं। जी-वात्माका मरण पश्चात् किसीसे नाता रिश्ता नहीं रहता यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि साध्वी पतिव्रता स्त्रीको पतिलोककी प्राप्ति मनुजी ने लिखी है इस कारण सूक्ष्म शरीरके साथ नाता रिश्ता अ-वश्य शास्त्र सम्मत होनेसे मन्तव्य है। जीवात्मा शब्द (नैवस्त्री०) पद्यमें नहीं किन्तु शुद्धात्मा विषय में वह पद्य है आवागमन सूक्ष्म शरीर का होता है उसके साथ नाता रिश्ता अवश्य रहता है। अन्य शरीर धारण करनेसे श्राद्धका खण्डन नहीं होता क्योंकि पितृयोनि

ग्राम करना भी एक शरीर है। यहां तक हमने इटावा वाले भी सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया।

अब अनेक फुटकर प्रश्नों के बहुविध समाधान श्राद्ध विषय में और भी दिखाते हैं। किन्ही २ प्रश्नोंके उत्तर कई प्रकार से लिखे गये हैं पाठक लोग उन सभी प्रकारोंको ठीक समझें। यदि किसी उत्तर में पुनरुक्ति हो तो उसे अनुवाद रूप समझिये।

'क्या ब्राह्मणों के पेट लेटरबक्स हैं उन में खाया अन्न पितरोंको कैसे पहुंच जाता है ?" यद्यपि इसका उत्तर पहिले भी लिखा गया है। तथापि अब फिर प्रकारान्तरसे समाधान लिखते हैं कि ब्राह्मणों का खायाहुआ अन्न लोकान्तरस्थ वा देशान्तरस्थ पितरोंको पहुंचाना शास्त्रकारोंका अभीष्ट सिद्धान्त नहीं है। यदि किसी ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर अपने घर आदर सत्कारपूर्वक भोजन करानेको बुलाया जाय तो इससे यह सिद्ध होजायगा कि उसके घर पर भोजन भेजना वा पहुंचाना अभीष्ट नहीं है। और जिन ब्राह्मणोंके यहां कुछ भोज्य वस्तु मिठाई परोसा वा सीधा भेजना अभीष्ट होता है उनको निमन्त्रण देकर अपने यहां नहीं बुलाया जाता। इसी के अनुसार पितृयज्ञों और श्राद्धों में वेद मन्त्रों द्वारा पितरों का आवाहन होना स्पष्ट सिद्ध है। जब वेद हम को साफ २ पितरोंके आवाहनको बतला रहा है तो परोसादि के तुल्य पितरों के पास लोकान्तरमें देशान्तर में वा किसी योन्यन्तरमें अन्न पहुंचाना अभीष्ट नहीं है यह सिद्ध होगया।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥

शु० यजु० । अ० १६ । ५८ । ५६ ॥

सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ अथर्व०

भाषा—सोम यागादिमें पूछने योग्य अग्नि में जिन का दाह कर्म विधिपूर्वक हो चुका है ऐसे दिव्य पितर देवयान नाम देवताओं सम्बन्धी आकाशमार्ग से आवें। पहिले जब श्राद्ध को मानते थे तब स्वा० द० ने भी पार्वण श्राद्ध की पद्धति स्वयं बनाई थी (जिसकी नकल हमारे पास अब भी विद्यमान है) उसमें भी यही (आयन्तुनः०) मन्त्र पितरों के आवाहन में लिखा है, अग्नि में जिनका दाह कर्म हो चुका है ऐसे हे अग्निष्वात्त पितरो ! यहां श्राद्ध वा पितृयज्ञमें आइये। हे नम्र कोमल स्वभाव वाले पितरो ! आप लोग इस यज्ञ में आकर अपने २ नियत स्थान पर बैठिये। और विधि के साथ कुशों पर रक्खे हुए पिण्डों का भोग लगाइये। और पुत्र पौत्रादि वीरों सहित धन हमारे लिये दीजिये। हे अग्निदेव ! उन सब प्रकार के पितरों को हविष्यान्न रूप पिण्ड खानेके लिये हमारे श्राद्ध में आवाहन कीजिये, इत्यादि मन्त्रों से श्राद्ध आदि के समय पितरों का आवाहन करना वेद से सिद्ध है। इसीके अनुसार मनुजी ने भी लिखा है कि—

निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते अ० ३। १८९

भाषा–जिन ब्राह्मणोंको श्राद्धमें न्योता दिया जाता है उनके समीप में पितर लोग उसी निमन्त्रण के समय से उपस्थित हो जाते हैं यदि वे ब्राह्मण कहीं चलते हैं तो उनके पीछे २ वायुरूप होकर पितर भी चलते और जब वे ब्राह्मण बैठ जाते हैं तब पितर भी उनके साथ ही बैठ जाते हैं। ब्राह्मण के साथ आने वाले पितर जिनका अत्युग्र प्रबल पुण्य हो तो साक्षात् दीख भी सकते हैं। रामायण में लिखा है कि जब भगवान् रामचन्द्र जी ने वन में अपने पिता दशरथजी का श्राद्ध किया था उसमें जो न्योते हुए ऋषि लोग आये उन के साथ २ महाराजा दशरथ जीको आते देखकर सीताजी आड़ में हो गयीं। अर्थात् सीता जी ने साक्षात् महाराज दशरथको देखा था यह मनु जी के कथन का उदाहरण इतिहास में लिखा है।

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥

मनु० अ० ३

जब तक श्राद्धका अन्न गर्मागर्म रहता, जबतक ब्राह्मण लोग मौन होकर खाते हैं और जब तक यजमान के पूछने पर भी ब्राह्मण लोग प्रत्युत्तरमें भोजनकी प्रशंसा नहीं करते तभीतक पितर लोग ब्राह्मणों के संगमें वायु रूप सूक्ष्म हुए भोजन करते हैं। पाठक महाशय! आप समझ गये होंगे कि पितरोंका श्राद्ध में आना पिण्डों का तथा ब्राह्मणोंके साथ भोजन करना प्रमाण सिद्ध है। इसीलिये पितरोंको श्राद्ध का फल कैसे पहुंचता है इसका विचार ग्रन्थों में नहीं लिखा गया। और पितरोंके पास हमारा पहुंच सकना अति कठिन वा असम्भव था परन्तु श्राद्धादि में देवता और पितरों का आ सकना सुगम वा सहज है क्योंकि वे लोग समर्थ और हम असमर्थ हैं इसी लिये यह सिद्धान्त वेदमें रक्खा गया कि देवता तथा पितर लोग यज्ञ श्राद्धादिमें आवाहन किये हुए आवें ॥

यदि कोई कहे कि देव पितर आते हुए हमें दीख पड़ें तो हम मानें तब हम उत्तर देंगे कि क्या दिन में उल्लू को नहीं दीखता तो सबके लिये अन्धकार मान लोगे ?। वेदशास्त्र रूप आंखोंसे देवों तथा पितरोंका सूक्ष्म यथेच्छाचारी होना तथा यज्ञादिमें आना दीख सकता है सो वेदरूप चक्षु स्वा० द० ने सब समाजियों के ऐसी दवा डालके फोड़दिये कि जिसमें अन्य भी कोई दवा नहीं लगती। देवों और पितरों का सूक्ष्म कारण शरीरधारी योगसिद्धियुक्त होना क्षण मात्र में लाखों कोश आ जा सकना अपनी इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर सकना इत्यादि बातें युक्तिसे भी सिद्ध होसकती हैं जिनको फिर किसी अवसर पर लिखेंगे। यह पहिले प्रश्नका उत्तर होगया।

अब द्वितीय शंका यह है कि सृष्टिके आरम्भमें पितरोंको ब्रह्माजीने बनाया वा पहिलेही से थे।

इसका संक्षेप से उत्तर यह है कि प्रत्येक ब्राह्म दिनके अन्त में

होने वाले काल्पिक प्रलय में देवता और पितरों का प्रलय ही नहीं होता केवल मानुषी सृष्टिका प्रलय होता है । दिव्य पितर सनातन कालसे चले आते हैं । प्रजापतिके पास पितरों आदिके जानेकी आख्यायिका उन २के कर्मका भेद दिखानेके लिये है कि परमात्माने इन सबके कर्म इस २ प्रकार नियत कर दिये हैं । महा प्रलयमें अवश्य सब ब्रह्मा पर्यन्त देवताओं का भी प्रलय हो जाता है तिस के बाद फिर होने वाली सृष्टिमें वे ही देव पितर मनुष्य फिर २ प्रकट किये जाते हैं जो पहिली सृष्टिमें देव पितर आदि रहे थे । इसीसे यह शंका भी दूर हो सकेगी कि मनुष्य मरकर पितरों में जाके मिलता है वा यहां पृथिवी पर जन्म लेता है । इसका संक्षेप उत्तर यह भी है कि आम तौर से कोई नियम नहीं अपने २ कर्मानुसार स्वर्ग नरक देव पितर मनुष्य पश्वादि योनि सबको मिलती है ॥

जो २ मनुष्य लोग अपने २ कर्मानुसार पितृयोनि में जाने योग्य होते हैं । उनके भी कर्म मनुष्यादियों तुल्य ऐसे अवश्य मानने होंगे कि जिनका फल भोग पितृयोनिमें उनको प्राप्त होना चाहिये । सो जैसे मनुष्योंको अपने २ पूर्व कर्मोंके शुभाशुभ फल मित्र स्त्री पुत्रादि द्वारा ही प्राप्त होते हैं । वैसे पितरोंको भी अपने कर्मोंका शुभ फल अपने अंश रूप पुत्रादि द्वारा प्राप्त होता है । यदि कहो कि पुत्रादि के किये श्राद्ध का फल तो पितरों को मिल गया तो पुत्रों को क्या मिला ? क्या पुत्रादि का परिश्रम वा समय व्यर्थ हो गया ? तब उत्तर यह है कि कोई पुरुष राजा रईस वा गुरु महात्मा को प्रसन्न करने का उद्योग करता हैं यदि उस पर वह राजादि प्रसन्न हो जावे तो वह मानलेता है कि मेरा परिश्रम सफल हो गया । वैसे यहां भी पितरों को प्रसन्न संतुष्ट करना ही मुख्य उद्देश है । और प्रसन्नता का परिणाम सर्वत्र यही है कि जो जिस पर प्रसन्न होता है वह उसके वांछित मनोरथोंको भी पूर्ण करता है । वैसे ही प्रसन्न हुये पितर लोग धन धान्य आरोग्य विद्या सन्तति धर्ममें रुचि आदि करा के पुत्रादि को प्रतिफल द्वारा सन्तुष्ट प्रसन्न कर देते हैं इस से पुत्रादि को अपने किये कर्म का शुभफल मिल जाता है ।

शंका—यह तो माना परन्तु बड़ी शङ्का तो यह है कि पिता पुत्र का सम्बन्ध तो शरीर के साथ है जीवके साथ नहीं, तो जब शरीर छूट गया तो वह शरीर महातत्वोंमें मिल गया। जीवने अपने कर्मा-नुसार कहीं जन्म ले लिया तब पिता के साथ कुछ सम्बन्ध न रहने से अब पुत्र के लिये श्राद्धादिका फल पितृ शरीर वाले जीवको कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं फिर मृतक श्राद्ध कैसे सिद्ध हो सकता है।

समाधान—इसका उत्तर अधिक सूक्ष्मता की ओर जा सकता है उसको यथासम्भव बताया जायगा। संसारमें जड़ चेतन वा प्रकृति पुरुष दो अंश मुख्य हैं। प्रकृति पुरुष के मेल का नाम संसार और परस्पर सम्बन्ध का छूट जाना मोक्ष वा परमार्थ है। जीव जब तक जन्म मरण के चक्र प्रवाहमें रहता है तब तक प्रकृतिका सम्बन्ध उस के साथ है प्रकृति का सम्बन्ध ही पञ्चतत्त्वका सम्बन्ध है। ईश्वरके साथ भी प्रकृतिका सम्बन्ध अवश्य लगा है क्योंकि प्रकृति सम्बन्धी ऐश्वर्य का स्वामी नाम मालिक होनेसे ही वह ईश्वर कहाता है। केवल भेद यही है कि जीव प्रकृतिके आधीन और ईश्वर प्रकृतिके आधीन नहीं है किन्तु प्रकृति ईश्वर के आधीन वा अधिकारमें है। मनुष्यादि प्राणी जब मरता है तब उसका स्थूल शरीर छूटजाता है वही पञ्चतत्त्व में मिल जाता है पर सूक्ष्मतत्त्वों का शरीर जो कि स्थूल में सारांश रूप होके विद्यमान था वह जीव के साथ जन्मान्तर में जाता है। वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है कि पिता पुत्र सम्बन्ध स्थूल शरीरोंके ही साथ है सूक्ष्मके साथ नहीं ऐसा मानना। क्योंकि पिता पुत्र सम्बन्ध मुख्य कर सूक्ष्मके साथही है स्थूलके साथ वैसा नहीं इसी लिये पिता के शरीर का सूक्ष्म सारांश आकर ही पुत्ररूप बनता है। यदि कहो कि जड़ के साथ सम्बन्ध है चेतन के साथ नहीं तो यह भी भूल है जड़ चेतन दोनों के साथ है केवल जड़ के साथ नहीं है। जड़ चेतन दोनों अत्यन्त मिले हुए हैं। जैसे भांग वा अफीम में नशा वा अग्नि में गर्मी जलमें शीतलता वैसे ही जड़

में चेतनांश मिला है। कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट है। वैसे शरीरों में नशा आदि के तुल्य सब धातुओंमें चेतनांश जो व्यापक है वह भी गर्भाधानके समय रजवीर्य्यके साथ जाता है। यदि कोई ऐसी रीति होती कि मुर्दा शरीरसे सन्तान पैदा होते तब तो पिता पुत्र सम्बन्ध केवल स्थूल शरीरों से ही है ऐसा कह सकते थे। सो मुर्दा होने पर शरीरों में रजवीर्य रहते ही नहीं। इस से यह सिद्ध हुआ कि जैसे भांग के साथ ही नशा भी रहता है वैसे ही रजवीर्य्य के साथ माता पिता का चेतनांश भी सन्तान में जाता है। तभी तो श्रुति स्मृति में कहा यह विचार भी ठीक घटता है कि—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीवशरदःशतम्॥

यह वेदमन्त्र निरुक्तादिमें लिखा प्रसिद्ध है कि हे पुत्र! तू मेरे अङ्ग अङ्गसे पैदा हुआ है। अर्थात् मेरे हाथ पांव आंख नाक कान आदि अङ्गोंके अंशसे तेरे हाथ पांव आदि पैदा हुए हैं। और (हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुतदेहिनाम्) चेतनता का स्थान जो मेरा हृदय है उससे तेरा चेतन हृदय हुआ है। इस कारण हे पुत्र! तू मेरा ही आत्मा नाम स्वरूप है अर्थात् मैं ही तेरे पुत्र नाम रूप में प्रकट हुआ हूं। सो तू सौ वर्ष तक जीवित रहे ऐसी प्रार्थनामैं दैव से करता हूं। जैसे सूत ही कपड़ा रूप हो जाता है वैसे पिता ही अपनी पत्नी रूप कलके द्वारा पुत्र रूपसे प्रकट हो जाता है। यही बात मनुस्मृति में भी स्पष्ट करके लिखी है। मनु० अ० ९ श्लोक ८।

पतिर्भार्यांसम्प्रविश्य गर्भोभूत्वेहजायते।
जायायास्तद्धिजायात्वंयदस्यांजायतेपुनः॥

अर्थः—पति ही अपनी स्त्री में रज वीर्य्य के साथ सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर गर्भ रूप बनके पुत्र नाम से प्रकट होता है। जिस कारण पुरुष स्त्री में जायते नाम प्रकट होता है इसीसे वह स्त्री उस पुरुषकी जाया कहाती है। इत्यादि अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि माता पिता का ही चेतनांश भी सन्तान में आता है इससे

स्थूल शरीर के साथ तो पिता पुत्र सम्बन्ध नहीं किन्तु सूक्ष्म चेतन शक्ति के साथ वास्तविक पिता पुत्र सम्बन्ध है। स्थूल शरीर तो पिता पुत्र सम्बन्ध की कार्यवाही को दिखाने वा करने का द्वार है। यदि पिता पुत्र दोनों के चित्तसे सम्बन्ध किसी कारण निवृत्त होजावे टूट जावे तो स्थूल शरीरों के विद्यमान रहने पर भी सम्बन्ध छूट जाता है। और यदि चेतन चित्त में सम्बन्ध बना तथा दोनोंका दृढ़ प्रेम लगा है तो एक पिताका शरीर न रहने पर भी सूक्ष्मका सूक्ष्मके साथ सम्बन्ध बना रहता है। इस ऊपर के लेखका सारांश यह हुआ कि प्रकृति का सूक्ष्म सारांश आत्म चैतन्य युक्त जीव कहाता है उसका भी अंश पिताके शरीर से पुत्र में आता है। और जन्मान्तर से दूसरा जीव जो पुत्रमें आता है वह भी अन्नादि के द्वारा पिताके शरीर में आकर उसके चेतनांशको लेता हुआ ही शुक्र के साथ गर्भमें आता है और स्थूल सूक्ष्मका अङ्गाङ्गि सम्बन्ध सिद्ध हो है कि जैसा गुडके साथ मिष्ट रसका सम्बन्ध है। इससे सिद्ध हुआ कि जीवके साथभी पिता पुत्र सम्बन्ध है।

और यह भी नियम है कि जैसे पृथिवी में एक ही जगह नीम और आम दोनों बो दिये जावें तो नीमका सम्बन्ध कडुपनके साथ होने से पृथिवी में व्याप्त कडुपन के अंश को नीम का वृक्ष दूर२ से भी खींचेगा और दूर २ का भी कड़वापन नीम के साथ आन्तरिक सम्बन्ध होने से स्वयमेव खिंच आवेगा। परन्तु नींवके अति समीपस्थ भूमि में जो आमका मीठा अंश होगा उसको नींवका वृक्ष कदापि नहीं खींचेगा। क्योंकि उसके साथ उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। यही बात वात्स्यायन ऋषिने न्याय दर्शन अ० १ आ० २ में स्पष्ट कही है।

यस्ययेनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापितस्यसः।
अर्थतोह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिसका जिसके साथ भीतरी सम्बन्ध है वह दूरस्थ होने परभी उसी अपने सम्बन्धी का है। और जिनका परस्पर सम्बन्ध

नहीं उनका एकत्र होना मेल का कारण नहीं है। इसीके अनुसार जिन जीवों का पिता पुत्रादि सम्बन्ध है उनके परस्पर दूर होजाने पर भी अर्थात् पिताके मरजाने पर भी उनका परस्पर भीतरी सम्बन्ध वा आकर्षण बना है। इसी कारण पितृ रूपधारी वसु रुद्र और आदित्य देवता श्राद्धके पिण्डों वा ब्राह्मण भोजन के सूक्ष्म सारांश वासनारूप तत्त्व को लेकर वहां २ पहुंचाते हैं कि जिस २ लोकस्थ जिस २ योनि में वे पिता पितामह वा प्रपितामह विद्यमान हैं श्राद्धांश भी भीतरी सम्बन्ध होनेसे स्वत एव उधर ही को आकर्षित होता है पितर लोग भी अपने अंश को स्वयं भी खींचते हैं। जैसे कि आकाश मण्डलस्थ नीले पनकेसाथ धुआंका भीतरी अंशांशी कार्य कारण सम्बन्ध होने से पृथिवीसे उठा धुआं स्वयमेव अपने सम्बन्धी के पास जाता है और आकाश मण्डलस्थ सूक्ष्म कारण जल भी उस धूम का आकर्षण करता खींचता है। इसीके अनुसार पुत्रादिकेकिये श्राद्ध कर्मका सूक्ष्मवासनारूप फलभी वसु, रुद्र और आदित्य देवताओंकी व्यापक शक्तियोंके द्वारा पितरोंका सम्बन्धी होनेसे लोकान्तरस्थ वा देशान्तरस्थ पितरोंके पास दोनोंके आकर्षणसे स्वयमेव पहुंच जाता है अर्थात् वास्तवमें तो वस्वादि रूपोंसे आवाहित पितर श्राद्ध में आते हैं। पर जहां २ देवादि योनियों में उन २ के अनुकूल अमृतादि रूप से श्राद्धका फल पहुंचना लिखा है उसका अभिप्राय यही पूर्वोक्त है कि उन मृत पुरुषोंका जहां २ कर्मानुसार जन्म हुआ है उस २ योनि में उनको वस्वादिके द्वारा आकर्षण के साथ श्राद्ध का परिणाम रूप उन २ के अनुकूल भक्षणीय वस्तु प्राप्त होता है आशा है कि उक्त दृष्टान्तों के अनुसार श्राद्ध का फल पितरों को पहुंच जानेकी रीति प्रश्नकर्त्ता और पाठक महाशयोंके ध्यानमें ठीक २ बैठ जायगी।

पर यह अवश्य ध्यान रहे कि जिनके कुछ कर्म अच्छे होते हैं उन्हींके अच्छे कर्मानुसार मरण समयसे लेकर ही पिण्डदानादि सब कर्म श्रद्धासे करने वाले भी पहिले से ही तैयार हो जाते हैं। उसी श्राद्धकर्मके अनुसार उनका जन्म पशु पक्षी कीट पतंगादि नीच योनियों में नहीं होता किन्तु उन को पितृलोकादि में उत्तम योनि ही

प्राप्त होती है। मरने पश्चात् जिनका श्राद्धादि ठीक होता है उन को भी यदि नीच योनि ही प्राप्त हो तो श्राद्ध का होना न होना एकसा होजाय। चाहैं यों कहो कि मरण के बाद जिन का श्राद्धादि कर्म होता है उनकी उत्तम गति होनेका यही कर्म निश्चय है। इसलिये पशु पक्षी आदिमें उनके जन्म होने और श्राद्ध का फल घास आदि रूप होकर मिलनेकी शङ्का यहां नहीं हो सकती॥

प्रश्न—कल्पना करो कि मृत पुरुष कर्मानुसार किसी के यहां भी भैंस आदि पशु बने और उन के लिये किया श्राद्ध लड्डू जलेबी आदि ब्राह्मणको जिमाये उनके बदले गौ भैंस आदि रूपधारी पितरोंको मिला घास भूसा, तो क्या यह अन्धेर नहीं है कि सुवर्ण के बदलेमें तांबा मिले। फिर यह पशुके स्वामी का पला, पशु का दुग्धादि फल स्वामीको मिला इससे हमारा क्या लाभ हुआ? सो बताओ?। और हम उस के निमित्त श्राद्ध न करें तो क्या पशु का स्वामी पशु को घास नहीं देगा। जैसे कैदखानों में भी कैदी को भोजन मिलता है वैसे स्वर्ग नरक में भी वहां २ के नियत भोग अवश्य मिलेंगे यदि न मिले तो वे स्वर्ग नरक ही कैसे होंगे ऐसी दशा में हमारा किया श्राद्ध व्यर्थ क्यों नहीं है॥

उत्तर—संक्षेप से उक्त प्रश्न का उत्तर यही है कि भोजनके स्वाद लगने में सुख है किन्तु जलेबी आदि में नहीं, पशु को घास में भी बड़ा स्वाद मिलता है पशु के स्वामी का सम्बन्ध विशेष कर पशु शरीर से है शरीर भोगाधिष्ठान है श्राद्धकर्त्ता का सम्बन्ध भोक्ता जीव से है इससे श्राद्धकर्त्ता पशु योनि से जीव का उद्धार करता है वह उद्धार को प्राप्त हुआ जीव अपने जन्मान्तरीय श्राद्धकर्त्ता का उद्धार करता है यही फल है तथा पशु पक्षी आदि मनुष्याश्रित कोई जीव ऐसे सुखी दीखते हैं जितना सुख गरीब मनुष्यों को भी प्राप्त होना दुर्लभ है और अनेक पशु चारा भी ठीक न मिलने तथा दुःखित रहने से ही मर जाते हैं वहां ऐसा क्यों नहीं मान लिया जावे कि जिन के जन्मान्तरीय पुत्रादि श्राद्ध करते हैं वे पशु योनि प्राप्त होने पर भी सुखी हैं और वही श्राद्ध उनको पशु योनि से छुड़ा के उत्तम दशा में

पहुंचाने वाला होगा जैसे मनुष्य योनि में सुख दुःखादि के सहस्रों भेद हैं वैसे ही स्वर्ग नरकों में भी सुखों वा दुःखों के अनेक भेद हैं। जिनका श्राद्ध यहां होता है उनको नरक में भी अनेकों की अपेक्षा कम दुःख मिलेगा। यद्यपि जेल में सामान्य नियत भोजन कैदियों को मिलता है तथापि कैदी के मित्रों को भोजन पहुंचाने का राजा की ओर से निषेध न होता तो जेलखानेकी अपेक्षा से उत्तम कैदियों के अनुकूल भोजनादि कैदी के घर वाले अवश्य पहुंचाते, आज्ञा न होने से नहीं पहुंचा सकते। यदि जेल के कर्मचारियों को गुप्त रीति से कुछ दे दिला कर पहुंचा सकते हैं तो कहीं २ वैसा होता भी होगा पर ईश्वरीय व्यवस्थाके स्वर्ग नरकों में उपदा नाम [रिश्वत वा घूंस] नहीं चलती इससे खुले मैदान श्राद्ध द्वारा उनको वर्त्तमान दशा से उच्च २ सुख भोग पहुंचाने का मार्ग वेदों द्वारा ईश्वर ने ही श्राद्धरूप से नियत किया है। स्वर्गलोकों में भी ब्रह्मलोक वा सत्यलोक पर्यन्त उच्च नीच सहस्रों भेद हैं। सम्राट् महाराज के पाचक की वा उनके अन्य कर्मचारियों की छोटे २ राजा भी विनती करें यह हो सकता है वैसेही देवताओंके परिचारकगण भी स्वर्गीय माने जावेंगे। पर उच्च कक्षाओं की अपेक्षा से उनको अपनी लघुता का दुःख भी रहेगा तथा मनुष्यादि की अपेक्षा अत्यन्त सुखी होने से वे स्वर्गीय सुखभागी भी माने ही जावेंगे। श्राद्ध करने का प्रयोजन केवल यह नहीं है कि श्राद्धके विना वे भूखों मरेंगे खाने को न मिलेगा किन्तु मुख्य अभिप्राय यही है कि भोजनादि सभी प्रकार सुख प्राप्तिके लिये हम को आगे बढ़ना चाहिये अर्थात् अपनेको और अपने बड़े बाप दादों को उन्नति के शिखर तक पहुंचाना चाहिये सो जैसे अपनी उन्नति के लिये दृष्ट अदृष्ट फल वाले सहस्रों उपाय वेदादि शास्त्रों द्वारा हमें बताये गये हैं वैसे मृत बाप दादादि की उन्नति के लिये भी वेदादि शास्त्रों ने श्राद्धादि उपाय विशेष कर इस लिये बताये हैं कि स्वर्ग नरकादि की भोग योनियां कर्मयोनि न होनेसे उनमें उन्नति के साधन प्रायः नहीं हो सकते इससे श्राद्धादि कर्म मोक्ष पर्यन्त उन्नति में पहुंचाना है॥

(प्रश्न) जिनने यज्ञ दान तप आदि कर्म अपने जीवन में बड़े समारोह से तथा प्रबल परिश्रम से किये हों और उनके श्राद्धादि कर्म करने वाला कोई पुत्रादि न हो वा हो तो श्राद्धादि न करे तब क्या उनको उत्तम स्वर्गादि फल प्राप्त नहीं होगा क्या वे नीच गति में जांयगे ? ।

उत्तर—यज्ञादि कर्म करने वाले का सन्तान ऐसा तो हो नहीं सकता जो नास्तिकतादि के कारण श्राद्धादि न करे । क्योंकि सर्वथा कारण से विरुद्ध कार्य होता नहीं । हां यह हो सकता है कि पुत्रादि न हो वा हो भी तो इतना छोटा हो जो तत्काल ठीक कर्म न कर सके अथवा ज्ञान वैराग्य के कारण विरक्त होजाने से श्राद्धादि न करे । प्रयोजन यह है कि कुछ हो जिसके यज्ञ दान तप आदि कर्म प्रबल हैं उसका श्राद्ध करने वाला कोई न हो वा होकर भी किसी कारण श्राद्ध न कर सके तो भी उसको अपने कर्मानुसार उत्तम स्वर्गफल अवश्य प्राप्त होजाता है ।

(प्रश्न) जिसके उत्तम यज्ञदानादि कर्म हैं उनके यदि श्राद्ध करने वाले पुत्रादि भी हों और श्राद्ध भी करें तो वह व्यर्थ हुआ कि नहीं ? क्योंकि उनको तो अपने कर्मानुसार उत्तम फल स्वर्गादि बिना श्राद्ध के भी प्राप्ति हो ही जायगा जैसा कि तुमने अभी ऊपर स्वीकार किया है ॥

(उत्तर) हम इस प्रश्न का समाधान पहिले लिख चुके हैं कि जैसे राजा गुरु पिता आदि धन धान्यादि पदार्थों से पूर्ण होने पर भी प्रजा शिष्य और पुत्रादि की समर्पण की भेंट से प्रसन्न सन्तुष्ट होते हैं आशीर्वाद वरदान देते हैं । अर्थात् राजा के पास किसी वस्तु की कमी न होने पर भी कुछ समर्पण के द्वारा प्रजादि की भक्ति राजादि चाहते हैं । वैसे ही स्वर्ग में प्राप्त हुए पितादि भी अपने अंश पुत्रादि की भक्ति चाहते हैं । और इस बात को यहीं क्यों न शोच लो कि तुम्हारे पास आमदनी होने पर तथा किसी कक्षा तक धन होने पर भी और अधिक २ धनादि तुम क्यों चाहते हो ? खाने पीने के पदार्थ विद्यमान होने पर भी और अधिक २ पदार्थों को मनुष्य

लोग प्रत्यक्ष में प्रायः सभी चाहते हैं। केवल पूर्ण योगी सर्वथा विरक्त पुरुष अवश्य नहीं चाहते। जब कि सभी भोगों के विद्यमान होते भी अधिक २ भोग सब चाहते हैं तो वैसे ही स्वर्गस्थ पितादि के पास उत्तम भोग उपस्थित होने पर भी यदि वेदानुकूल धर्मानुकूल श्राद्धादि का अमृत रूप फल वे अधिक २ चाहते हैं तो आश्चर्य वा अनुचित ही क्या है! । अथवा इस बात को ठीक २ समझने के लिये द्वितीय प्रकार यह भी हो सकता है कि यहां संसार में अच्छे पण्डित विद्वान् धर्मात्मा महात्मा लोग होते हैं वे अपने पुत्रादि का धर्मात्मा होना सब कामों से अधिक चाहते हैं और पुत्रादि के धर्मात्मा होने से सर्वोपरि सन्तुष्ट वा प्रसन्न होते हैं । और वेदोक्त कर्म का अनुष्ठान ही मनुष्य के धर्मात्मा होने का बड़ा चिन्ह है । इसी के अनुसार देवता और पितर लोग जो स्वतः सिद्ध मनुष्य से भी बहुत अधिक विद्वान् महात्मा हैं वे अपने अंशरूप पुत्रादि की वेदोक्त श्राद्धादि कर्म के द्वारा अपने तुल्य उत्तम गति चाहते हैं।

इस बात की देवता और पितरों को बड़ी उत्कट इच्छा होती है, इस इच्छा के पूर्ण न होने पर उनको इसका बड़ा दुःख रहता है और उन की इच्छानुसार यदि पुत्रादि वेदोक्त यज्ञ श्राद्धादि कर्म करते हैं तो अपने मनोरथ को पूर्ण होते देख अत्यन्त प्रसन्न संतुष्ट होते हैं। और प्रसन्नता ही सुख वा सुफल प्राप्ति का चिन्ह है । इससे सिद्ध हुआ कि स्वर्गस्थ पितादि की प्रसन्नता और अपना कल्याण दोनों उद्देश्य से वेदोक्त श्राद्धादिक कर्म पुत्रादि को करना चाहिये। जब संसार में कोई मनुष्य अपने शुभ गुणों वा विद्यादि के अनुसार कोई बड़ा अधिकार प्राप्त कर लेता है तब भी उस की यह आकाङ्क्षा विशेष कर रहजाती है कि मेरे पुत्रादि भी वैसेही उत्तमाधिकारी बनें यदि वैसे नहीं बनते तो यह दुःख भी उस उत्तमाधिकारी को अवश्य खटकता है वैसे ही यहां देवता और पितरों में भी जानो ।

जगन्मोहन वर्मा कहते हैं कि पितृयज्ञ होमान्तकृत्य का नाम है और पिण्डदान उससे भिन्न कृत्य है उनका यह कहना सर्वथा युक्ति

प्रमाण से शून्य है जगन्मोहनजी जिस कर्मको पितृयज्ञ समझते और लिखते हैं उसका नाम पितृयज्ञ है ही नहीं किन्तु उसका सर्व सम्मत नाम पिण्डपितृयज्ञ है इस पिण्ड पितृयज्ञ का वर्णन शतपथ ब्राह्मण कां० २। अ० ३ ब्रा० ४ की चौबीस कण्डिकाओं में साफ २ किया गया है। तथा इसी पिण्डपितृयज्ञका वर्णन कृष्णयजु० के तैत्तिरीय ब्राह्मणमें दर्शपौर्णमासेष्टिके पश्चात् आरम्भ में ही आया है वहां यह भी लिखा है कि (तृतीये वा इतो लोके पितरस्तानेव प्रीणाति) यहां से तीसरे लोक में पितर रहते हैं उन्हीं को पिण्डपितृयज्ञ द्वारा यजमान तृप्त करता है। कातीय श्रौत सूत्र अ० ४ की प्रथम कण्डिका के ३१ इकत्तीस सूत्रों में पिण्डपितृयज्ञ का वर्णन है। सूत्र १—

अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम् ॥

अर्थ—जब चन्द्रमा न दीखे उस अमावास्याके दिन मध्यान्होत्तर पिण्ड पितृयज्ञ करे। यहां स्पष्ट मूल सूत्र में ही पिण्डपितृयज्ञ नाम लिखा है। तथा—आपस्तम्बीय श्रौतसूत्रके प्रथमाध्यायकी सातवीं कण्डिकाके आरम्भमें पहिला सूत्र यह है कि—

अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्ड—पितृयज्ञं कुरुते।

इस सूत्रमें भी इस कर्म का नाम ही पिण्डपितृयज्ञ रक्खा गया है। तथा कातीय श्रौतसूत्रके भाष्यमें कर्काचार्यादि लिखते हैं कि—

पिण्डपितृयज्ञ इति वक्ष्यमाणस्य कर्मणः समाख्या सा च पिण्डदानपदार्थस्यैवार्थानुगमात् पिण्डैः पितॄणां यज्ञः पिण्डपितृयज्ञइति। अतश्च होमजपादयस्तदङ्गम्। प्रयोजनं चिन्तायाः पिण्डदानस्याकरणे अभ्यावृत्तिः। न होमादेः। कातीयश्रौतसू० अ० ४ कं० १ सू० १॥

अर्थः—पिण्डपितृयज्ञ यह कण्डिका भर में कहे कर्मका अर्थानुकूल नाम है क्योंकि इस कर्ममें पिण्डदान मुख्य है। पिण्डोंके द्वारा

जो पितरोंका यज्ञ नाम पूजन किया जाता है उसका नाम पिण्डपितृयज्ञ है इससे उस के साथमें होने वाले होम जपादि सब अङ्ग नाम गौण हैं पिण्डदान मुख्य अङ्गी है । इस वातका विचार भाष्यमें इस लिये किया गया है कि–पिण्डदान न करे तो उस कर्मको सर्वथा न हुआ मानकर फिरसे सब कृत्य करे और होमादि किसी कारण छूट जाय तो फिरसे कर्म नहीं किया जायगा किन्तु उसका प्रायश्चित्त हो सकेगा । इसीके अनुसार शाङ्खायनकल्प और कठसूत्रादि में पिण्डपितृयज्ञ कर्म की संज्ञा होने के प्रमाण मिल सकते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि पितृयज्ञ और पिण्डदान दो कर्म भिन्न २ नहीं हैं । अब यह भी विचार सुनिये कि पितृयज्ञ संज्ञा किस कर्मकी है । एक तो पञ्चमहायज्ञोंमें नित्यकर्मका नाम स्मार्त्त वा गृह्य पितृयज्ञ है जैसा आश्वलायनगृह्य० । अ० ३ कं० १ ।

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञ इति ।

तथा मनु० अ० ३ में लिखा है कि–(पितृयज्ञस्तुतर्पणम्) इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी जानो । पर स्मरण रहे कि इस पितृयज्ञमें सभीके मतानुसार पितरों के नामसे भूतवलियोंसे दक्षिण में एक पिण्ड अपसव्य होके दिया जाता है उतने ही कर्म का नाम पितृयज्ञ है वा मनुजीकी रायमें पितरोंके तर्पणका नाम पितृयज्ञ है । ब्राह्मण को भोजन वा होम का नाम यहां पितृयज्ञ कदापि नहीं है क्योंकि इस प्रसंगमें अर्थात् पञ्चमहायज्ञोंमें ब्राह्मणको भोजन कराने का नाम मनुष्ययज्ञ वा अतिथियज्ञ तथा अग्निमें होम का नाम देवयज्ञ है । इस से पितरों के नाम पिण्डादि रूप से अन्नजल देने मात्र कर्मका नाम पितृयज्ञ सिद्ध है । द्वितीय चातुर्मास्य यज्ञों के साकमेध पर्व में होम और पिण्डदानादि सब कृत्य के तीन नाम हैं १ पितृयज्ञ २ महापितृयज्ञ और ३ पित्र्या इष्टि । प्रयोजन यह निकला कि कातीय श्रौत सू० अ० ४ कं० १ । में लिखा कर्म पितृयज्ञ और पिण्डदान दो प्रकारका नहीं और न उसका नाम पितृयज्ञ है किन्तु ऊपर लिखे अनुसार वह कर्म पिण्डपितृयज्ञ कहाता है ॥ इस से जगन्मोहन जी

की लिखनेमें सर्वथा भूल होना सिद्ध है। अग्निका नाम वेद में हव्य वाहन और कव्यवाहन ठीक है इसमें कुछ विवाद नहीं है। "पिण्ड दानके विषय में अवश्य कह सकता हूं कि यह विवाद नवीन नहीं वरन प्राचीन कालसे चला आता है,, जगन्मोहन जी का यह कथन एक अंशमें लें तब तो ठीक है कि नास्तिक लोग भी प्राचीन कालसे ही चले आते हैं (मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्) इत्यादि नास्तिकोंने श्राद्धादि सभी कर्मोंका खण्डन किया ही है पर अनुमान है कि उक्त महाशयका अभिप्राय यह नहीं है किन्तु वे आ· स्तिक ऋषियों में पिण्डदान पर विवाद मानते हैं सो यह सर्वथा असत्य है। आगे जगन्मोहनजी लिखते हैं कि "जातूकर्ण्याचार्य्यजी पिण्डदान को नहीं मानते और कहते हैं कि मृतक के निमित्त दान नहीं हो सकता,, सो यह लिखना सर्वथा मिथ्या है इस में कुछ भी सत्य नहीं। इस की स्पष्टता के लिये हम कातीय श्रौत सूत्र यहां क्रमसे लिखते हैं।

प्रेतेभ्यो ददाति ॥ २३॥ सू० । भा०—यत्पितृप्रभृतिभ्योदानमुक्तं तत् प्रेतेभ्यो मृतेभ्यः पितृपितामहप्रपितामहेभ्यो ददाति न जीवद्भ्यः। सू०—जीवपितृकोऽपि ॥२४॥ भा०—पिण्डपितृयज्ञोऽधि क्रियते ॥- सू०—जीवान्तर्हितेऽपि ॥ २५ ॥ भा०—जीवपितृकस्य जीवेन पित्रादिना अन्तर्हितेऽपि व्यवहितेऽपि पितामहादौ पिण्डदानं भवति । सू०—जीवपितृकस्य होमान्तमनारम्भोवा ॥ २६॥ भा०—जीवपितृकस्य यजमानस्य होमान्तमेव पिण्डपितृयज्ञसंज्ञं कर्म भवति । अथवाऽनारम्भएव पिण्डपितृयज्ञस्य, वा शब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । अत्रानारम्भपक्षएव युक्तः । यतः पिण्डदानं प्रधानम्। तदभावे होमस्याङ्गभूतस्यानुष्ठानं

न घटते ॥ सू०—न व्यवेते जातूकर्ण्यौ न जीवन्तमतिददातीति ॥ २७॥ भा०—जीवपितृकस्य होमान्तं कर्म कुर्वतो यतो जातूकर्ण्य आचार्यौ न व्यवेते—जीवता पित्रा व्यवहिते पितामहादौ पिण्डदानं न भवतीत्याह: कुतो न भवतीत्यत्र हेतुः न जीवन्तमतिददातीति शाखान्तरे श्रवणात् । अतः प्रधाने पिण्डदाने जीवपितृकस्य निषिद्धेऽनारम्भएव घटते न होमान्तता ॥

भाषार्थः—पूर्व जो पिता आदिके लिये पिण्डदान कहा है सो मरे हुये पितादि के नाम से देना चाहिये । यदि कोई जीवित हो तो उसके नाम से न देवे । जिस का पिता जीवित हो उसको भी पिण्डपितृयज्ञ करने का अधिकार है । जीवित पिता को बीच में छोड़ के भी मरे हुए पितामहादि के नाम से पिण्डदान हो सकता है जिसका पिता जीता हो वह होमान्त पिण्डपितृयज्ञ करे । यहां तक तो पूर्व पक्ष का विचार है । यहां से आगे उत्तरपक्ष सिद्धान्त का विचार चलता है कि जिसका पिता जीवित हो वह पुरुष यदि अग्नि को स्थापित भी करले तो भी पिण्डपितृयज्ञ कर्मका आरम्भ ही न करे । होमान्त कर्म करने पर उसमें पिण्डदान न होनेसे उसका नाम पिण्डपितृयज्ञ होही नहीं सकता । जैसे कि विवाह में कन्यादान और पाणिग्रहण न हो तो केवल अङ्गरूप गौण वरपूजनादि करना सर्वथा व्यर्थ है । वैसे ही होमान्त कर्म भी व्यर्थ है । इस लिये अनारम्भ पक्ष ही सिद्धान्त है क्योंकि पिण्डदान प्रधान अङ्गी है उसके न होने पर गौण होमका करना नहीं घटता । जीवित पिता को बीच में छोड़कर पितामहादि के नाम से पिण्डदान नहीं हो सकता ऐसा जातूकर्ण्य आचार्य कहते हैं क्योंकि किसी शाखामें श्रुति है कि (न जीवन्तमतिददाति) जीवित पिता को उल्लंघन कर पितामहादि को पिण्ड दान नहीं करना चाहिये इस से सिद्धान्त यह निकला कि जिसका पिता जीवित हो उसको न होमान्त और न पिता को छोड़के अन्यों के नाम पिण्डदान

कुछ भी न करना चाहिये। अब आशा है कि पाठक लोग तथा ज-गन्मोहन जी इस प्रकरण का अभिप्राय समझ गये होंगे। "जातूक-र्ण्याचार्य पिण्डदान को नहीं मानते कि मरों के लिये दान नहीं हो सकता" यह जगन्मोहनजीका कहना सर्वथा निर्मूल है। इस प्रकरण में केवल इस बातका विचार किया गया है कि जिसका पिता जी-वित हो उस को मरे हुए पितामहादि के नाम से पिण्डदान करना चाहिये वा नहीं उसका निर्णय (फैसला) जातूकर्ण्याचार्य ने भी शाखान्तरीय श्रुति का प्रमाण देकर यही किया है कि उस पुरुष को पिण्डदान वा पिण्डपितृयज्ञ का कुछ भी कृत्य नहीं करना चाहिये। और जगन्मोहनके विचारका इस प्रकरणमें कहीं नामनिशान नहीं है।

आगे (पितॄन् बर्हिषदो यजति) इत्यादि तैत्तिरीय ब्राह्मण के वाक्यों में कोई एक भी शब्द नहीं जिस से जीवितों का श्राद्ध सिद्ध हो और ऐसा भी कोई शब्द नहीं जो मृतक श्राद्ध में न घट सके। जैसे कोई मनुष्य विवाह और यज्ञोपवीतकी प्रक्रियाको सर्वथा ही न जानता हुआ उस प्रकरण के किसी एक दो वाक्योंको कल्पसूत्रादि से ले भागे और दावा करे कि विवाह वा उपनयन के ये वचन तो मृतक में घट सकते हैं इस लिये विवाह मरोंका होना चाहिये। वैसे ही यहां भी जानो। हम दृढ़ प्रतिज्ञाके साथ दावा करके लिखे देते हैं कि यदि वह पुरुष हठी नहीं है तो कल्पसूत्रों को कुछ काल तक किसी विद्वान् के पास पढ़े और महापितृयज्ञ तथा पिण्डपितृयज्ञ सम्बन्ध की सब श्रुतियों और सूत्रों को ठीक समझ ले तो कदापि लेशमात्र भी सन्देह न रहेगा और जीवित का श्राद्ध कहने वालों की बुद्धि पर ऐसे ही हंसेगा जैसे मरों के विवाह को कोई हंसे। तैत्ति-रीय ब्राह्मण के उक्त वचन चातुर्मास्य यज्ञों के साकमेध पर्वान्तर्गत महापितृयज्ञ प्रकरण के हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के इसी महापितृयज्ञ प्रकरण में लिखा है कि—

तृतीये वा इतो लोके पितरस्तानेव प्रीणाति॥ तै॰ ब्रा॰।

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ १ ॥
अथर्व सं० कां० १८ अनु० २ मन्त्र ४८।

अर्थः—इस पृथिवी लोक से तीसरे लोक में (वै) निश्चय कर पितर रहते हैं उन्हीं बर्हिषदादि पितरों को यजमान इस महा- पितृयज्ञ में तृप्त करता है तथा अथर्ववेद संहिता में लिखा है कि मेघों वाला पहिला आकाश उदन्वती द्यौ कहाता है उससे ऊ- पर मध्यम आकाश भाग पीलुमती द्यौ कहाता है। तथा उससे भी ऊपर का लोक प्रकृष्ट अधिक प्रकाश वाला होने से तीसरा प्रद्यौः कहाता है उसी तीसरे प्रद्यौ नामक लोकमें पितर रहते हैं। तथा सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है कि (विधूर्ध्वभागे पितरो व- सन्ति) विधु नाम चन्द्रमा के ऊपरी भागमें पितर बसते हैं। क्या ये तीसरे लोकमें रहने वाले जीवित मनुष्य हो सकते हैं? कदापि नहीं। बर्हिषद् पितर वे हैं जो दर्शपौर्णमासादि हविर्यज्ञ कर चुके तथा जिनने ये यज्ञ नहीं किये किन्तु स्मार्त्ताग्नि सम्बन्धी होमादि किये हैं वे अग्निष्वात्त हैं। मनुष्य की जीवित दशामें जिनने श्रौत स्मार्त्त यज्ञ किये वे पीछे बर्हिषदादि कहाये। इस प्रकार मरोंमें ही यह प्रकरण ठीक घटेगा जीवितों में नहीं। क्योंकि जीवित मनुष्य यहांसे तीसरे लोक में नहीं रहते किन्तु पृथिवी में ही रहते हैं। अब रहा वाल्मीकीय रामायण में जाबाल का खण्डन करना सो जब वा० रामायण के वे श्लोक प्रमाण पते सहित सामने उपस्थित किये जांयगे कि वा० रामायणके अमुक कांडके अमुक सर्गमें यह लिखा है तब हम उस पर कुछ विशेष लिख सकते हैं। अभी केवल इतना ही लिखते हैं कि जाबाल ऋषि वा महर्षि वहां कदापि नहीं लिखा होगा। ऋषि महर्षि श्राद्धका खण्डन करे यह कदापि सम्भव नहीं है। एक नाम का एक ही पुरुष नहीं होता किन्तु एक ही समय तथा भिन्न २ समय में एक नाम के अनेक पुरुष होते हैं उनमें किसी नास्तिक जाबाल ने श्राद्ध तर्पणका खण्डन किया होगा। क्या उस

खण्डन को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामचन्द्र जी ने ठीक मान लिया था ? यदि नहीं मान लिया तो ऐसा खण्डन अब भी तो सहस्रों आर्यसमाजी करते हैं पर कोई आस्तिक सनातनधर्मी तो उसे ठीक नहीं मानता सारांश यह है कि आस्तिकोंमें पिण्डदान पर कभी न मतभेद था और न कभी विवाद हुआ ॥

जातूकर्ण्याचार्य ने तो पिण्डदानका खण्डन कियाही नहीं जैसा पूर्व लिख चुके हैं तब जाबाल जातूकर्ण्यके अनुयायी कैसे हो सकते हैं। महाभारत में पिण्डदानका खण्डन नहीं किया। रही ब्राह्मण भोजन की प्रधानता सो हमें भी स्मार्त्त श्राद्ध में स्वीकृत है कि केवल शुद्धाचारी ब्राह्मणको यथाविधि पूजन कर भोजन करा तथा दक्षिणा दान देनेसे भी श्राद्ध होसकता है पर वहां भी श्राद्धका मृतकोद्देश होना अवश्य माना जायगा जैसा कि—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥

मनु अ० ३ श्लो० १८९ में लिखा है कि जिन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमन्त्रण दिया जाता है उनके साथ पितृलोक वासी सूक्ष्म पितर उपस्थित होते हैं उनके चलते समय वायु के तुल्य पीछे चलते और बैठ जाने पर बैठ जाते हैं। इस कारण मृतकोद्देश से ब्राह्मण भोजन मात्र भी श्राद्ध माना जायगा। पर जिस में पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन दोनों कृत्य विधि पूर्वक हों उस श्राद्ध से केवल ब्राह्मण भोजनरूप श्राद्ध निकृष्ट कक्षाका अङ्गहीन अवश्य माना जायगा क्योंकि मनु आदि धर्मशास्त्र में दोनों का साथ ही विधान है। पात्रिक श्राद्ध भी मृतकोद्देश से सभी लोग शास्त्रानुकूल जानते मानते हैं। जगन्मोहन जी बस्ती आदि के विद्वानों से निर्णय कर लेवें। वेदमन्त्रों के अर्थ आज तक किसी ऋषि वा आचार्यने जीवित श्राद्ध परक नहीं किये तब अङ्गहीन पुरुषों के अर्थ को कोई आस्तिक कैसे मान लेगा ?। वेद मन्त्रों का अर्थ ईश्वर वादके खंडन का कोई करे तो जगन्मोहन जी उसे क्या ठीक मान लेंगे ?। यदि मानेंगे तो वैसा ही यहां भी मान लेवें ॥

सारांश यह निकला कि श्राद्ध सदा से सब ऋषि महर्षियों की एक रायसे मरों के लिये सनातन से चला आया है। परस्पर दिन रातके समान विरुद्ध दो मत कदापि वेद शास्त्र सम्मत नहीं हो सकते। जगन्मोहनजीका सिद्धान्त (मुरारेस्तृतीयः पन्थाः) हो गया इसको आर्यसमाजी भी नहीं मानेंगे और न सनातनधर्मी ठीक मानेंगे। अब अन्तमें हम जगन्मोहन जी को राय देते हैं कि यदि वे वास्तवमें सत्यके खोजी और हठ नहीं रखना चाहते तो इस निष्पक्ष सच्चे समाधानको स्वीकार कर प्रकाशित करें। यदि अब भी श्राद्ध विषयमें जितनी शंका बाकी रह गई हों उन सबको जिज्ञासु भावसे लिखें दावेके साथ लिखना अच्छा नहीं तो उनका यथार्थ उत्तर विद्वान् लोग देंगे। हमारा उद्देश भी यही है कि हम कदापि हठ नहीं करें सत्य को ही मानेंगे परन्तु सत्यासत्य का ठीक २ विवेक हम अपनी केवल बुद्धि से कर सकें ऐसी शक्ति वा योग्यता हम अपने में नहीं देखते। इसलिये संहिता ब्राह्मणादि से जो सिद्धान्त स्थिर हो जाय उसीको सत्य मानना यही परम्परा सनातन कालसे ऋषि महर्षियों की चली आई है इसी मर्यादा पर चलना हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। यद्यपि हम केवल शुष्कतर्कवाद का भी अच्छा उत्तर लिख सकते हैं पर हम उस को शास्त्र मर्यादासे भिन्न होनेके कारण अच्छा नहीं समझते। तथापि यदि जगन्मोहनजी चाहें और केवल तर्कों द्वारा प्रश्न करें वा अन्य कोई भी पुरुष वैसे प्रश्न करे तो भी हम उत्तर देवेंगे। परन्तु आस्तिक ऋषि महर्षियों की मर्यादा यह है कि—

व्यवस्थापुनरग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइति लौकिकस्य स्वर्गे न लिङ्गदर्शनं न प्रत्यक्षम्। वात्स्यायन भा० १। १। ३।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्ततेकामकारतः।
नससिद्धिमवाप्नोति न सुखं नपराङ्गतिम्॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्त्तुमिहार्हसि ॥
भ० गीतायाम् ।

अर्थ–स्वर्ग चाहने वाला मनुष्य अग्निहोत्र करे तो इस प्रमाण में कहे स्वर्गको संसारी मनुष्य अनुमान वा प्रत्यक्षसे नहीं जान सकता। इस कारण शास्त्र विधिको छोड़कर अपनी इच्छामात्रसे किसी बात का निर्णय न करे क्योंकि ऐसा करनेसे कुछ भी हाथ न लगेगा। इस लिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इस फैसले के लिये शास्त्र को ही प्रमाण मानना उचित है। शास्त्रोक्त विधानको जानकर हमको संसार में अपना कर्त्तव्य कर्म करना चाहिये। सो शास्त्रविधिसे तो श्राद्ध पिण्डदान सर्वसम्मत निर्विकल्प सिद्ध हो गया है। हमारे जगन्मोहन जी भी मन्त्र ब्राह्मण दोनों को स्वतः प्रमाण वेद मानचुके हैं हम विशेष आवश्यकता होने पर मन्त्र ब्राह्मण के सैकड़ों प्रमाण पिण्डदानादि की सिद्धिमें दे सकते हैं॥

श्राद्धविषयमें आर्यसमाजियोंसे प्रश्न ।

१–तुम लोग श्राद्ध किसी खास कर्म को मानते हो तो विवाह यज्ञोपवीतादि के तुल्य उस का विधान किस ग्रन्थमें है। और उस की पद्धति कहां है ? ॥

२–"श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्,, ऐसा अर्थ मानते हो तो यह श्राद्धका शाब्दिक अर्थ हुआ। तब श्राद्धका लाक्षणिक अर्थ क्या है? अथवा क्या लाक्षणिकार्थ है ही नहीं। यदि शब्दार्थ को ही मुख्य मानते हो तो क्या विशेष प्राप्ति विशेष मेल अर्थात् किसी बालकको छातीसे लिपटा लेने पर उस के साथ विवाह मानोगे ? । और उप नाम समीप बुला लेना क्या उपनयन मानोगे ? ॥

३–क्या समाजी मतके अन्य कामों को श्रद्धा से करना तुम नहीं मानते हो ? तब उन सबका नाम श्राद्ध क्यों नहीं है। जब नित्य २ श्रद्धासे भोजन करते हो तो क्या वह भी श्राद्ध है॥

४–तुम जीवितों का श्राद्ध मानते हो तो मरों का विवाह करना क्यों नहीं मान लेते। यदि मरों के विवाह को असंभव तथा व्यर्थ

कहो तो वैसा ही जीवितों का श्राद्ध तर्पण व्यर्थ वा असम्भव क्यों नहीं है क्या जीवितों का श्राद्ध कभी कहीं हुआ वा किसी ने किया और कहीं लिखा है ? ।

५-स्वा० द०.ने सन् ७५ के सत्यार्थप्रकाश में जितने जीवित हों उनके नाम से तर्पण न करे किन्तु जो २ मर गये हों उनके नाम से तर्पण करे ऐसा लिखा है सो इसको तुम प्रमाण क्यों नहीं मानते ? यदि मानते हो तो जीवितों का श्राद्ध तर्पण करना मिथ्या क्यों नहीं है यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं लिखा किन्तु छपाने शोधने वालों ने वैसा बना दिया है तो क्या तुम में से कोई भी समाजी वेद पुस्तक हाथ में लेकर शपथ के साथ कह देगा कि यह सत्य है ? ॥

६-जब अथर्ववेद १८ । १ । ४४ । (असुंयईयुः०) मन्त्रांश का अर्थ प्राण वायु मात्र सूक्ष्म देहधारी पितर निरुक्त के अनुसार सिद्ध हो चुके हैं तो जीवित स्थूल देहधारियोंमें वह अर्थ कैसे घट सकेगा क्या उससे मृत पितर सिद्ध नहीं हैं ? ॥

७-जब अथर्ववेद १८ । २ । ४६ में लिखा है कि (य आविविशु-रुर्वन्तरिक्षम्) जो पितर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश कर चुके हैं । तब क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष में प्रवेश कर जाते हैं ? यदि नहीं कर लेते तो मृत पितरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

८-जब अथर्ववेद १८।३।४४ में (अग्निष्वात्ताः पितर एहगच्छत) यहां हविष् खाने के लिये उन पितरों को बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्नि में जलाये गये थे । क्योंकि (यानग्निरेवदहन्त्स्व-दयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिन को जलता हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पद का अर्थ शतपथ काण्ड२ में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं? इस प्रमाण से भी मरोंका श्राद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है । क्या तुम्हारे मत में जीवित ही जला दिये जाते हैं और क्या जल जाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं । यदि ऐसा हो तो किसी समाजीको दाहकर्म होजाने पर क्या जीवित दिखा देगे ।

९-जब अथर्व।१८।३।६९ (यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः सधावती:) यहां तिल मिले जौ पितरों के लिये बिखेरना लिखे हैं सो क्या जीवितों के सामने बिखेरना उचित है और क्या इस से मृतक श्राद्ध सिद्ध नहीं होता ? ॥

१०-१८ । ३ । ७२ में (येतेपूर्वपरागताः) जो पहिले पितर पूर्व काल में व्यतीत हो गये उनके लिये भी तर्पण करना चाहिये। क्या इस प्रमाण से मरे हुए पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता और क्या ऐसा कथन जीवितों में घट सकता है ? ॥

११-अथर्व १८ । ४ । ४८ में (मृताः पितृषु संभवन्तु) मरे हुए मनुष्य पितृयोनि में प्रकट हों उन्हीं के लिये श्राद्ध तर्पण होता है। क्या यहां मूल वेद में मृत शब्द नहीं है और क्या इस से मरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ? ॥

१२-अथर्व० १८ । ४ । ६३ में (अधामासिपुनरायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि मासिक श्राद्ध में पितरों का विसर्जन करके महीने भर बाद फिर बुलाना कहा है सो क्या जीवित पितरों को तुम महीने में एक ही बार भोजन देते हो ? । क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं। यदि हां कहो तो वे कौन हैं ? (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः) अथर्व १८ । ४ । ८० दिव्नाम स्वर्ग में रहने वाले पितरों को यहां नमस्कार कहा गया है। सो क्या जीवित ही समाजियों के पितर स्वर्ग में जाते हैं यदि कोई जीवित स्वर्ग में जाते नहीं देखे जाते तो इससे मरों का श्राद्ध करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

१३-क्या तुम्हारे मतमें जीवित पितरोंको अपसव्य हो वायां गोड़ू पृथिवी में टेक के दक्षिणको मुख करके भोजन दिया जाता है और ऐसा क्यों करना चाहिये। क्या इसका कुछ फल वा प्रयोजन प्रत्यक्ष में दिखा सकते हो। क्या इस प्रकार दिये भोजन को तुम्हारे जीवित पितर खा लेते हैं। क्या अशुभ नहीं मानते और ऐसा कृत्य पोप लीला क्यों नहीं है ॥

१४-क्या तुम लोग (अपराह्न: पितॄणाम्) इस शतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिता को भी दोपहर के बाद ही भोजन दोगे। और

मनुष्यों के भोजन का समय मध्यान्ह लिखा है क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरों का भिन्न २ समय क्यों रक्खा है, क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरों का भिन्न होना सिद्ध नहीं है ॥

१५-जब शतपथ काण्ड २। ३। ४ में लिखा है कि (तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्यों से पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं। सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं। क्या इससे मृत पितरों के लिये श्राद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है। शतपथ में पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जीवित पितरों को भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ करदेना ठीक समझते और क्या वैसा करते हो ॥

१६-(संनिदधातिये रूपाणि०) शतपथ २। ३। ४ में लिखा है कि (ये रूपाणि०) मन्त्र पढ़के पिण्डों के स्थान से दक्षिण में एक अङ्गार रक्खे। सो क्या जीवित पितरों के पास तुम मन्त्र पढ़के एक अङ्गार रखते हो ? तब क्या गर्मी के दिनों में तुम्हारे पितर घबड़ाते नहीं हैं ॥

१७-ऋग्वेदादि भा० भूमिकामें स्वा० द० ने अग्निष्वात्त शब्दका अर्थ अग्निविद्या को जानने वा अग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले एंजिनके ड्राइवर आदि किया और आगरेके शास्त्रार्थमें समाजी उपदेशकों ने जले हुए मुर्दों के परमाणु अर्थ किया है। इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य है और दो में कौन एक मिथ्या है ? ॥

१८-क्या समाजी लोग अग्निष्वात्त पितरों को बुलाने के समय काले २ एंजिनके ड्राइवरों का आवाहन करते हैं अथवा तु० रा० के किये अर्थानुसार जले मुर्दों के परमाणुओं से (अग्निष्वात्ताः पितर एहगच्छत सदः सदः सदत) कहते हैं कि हे जले हुए मुर्दों के परमाणुओ ! तुम लोग यहां आओ, अपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजन के बाद हमको बहुत सा धन दे जाओ, सो क्या मुर्दोंके जले हुए परमाणु आते, आसनों पर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं। इससे क्या समाजियोंके पितर मुर्दोंके जले हुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ? ॥

१६-अ० मा० भू० में स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है हम निरुक्त शतपथादि प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंके अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं फिर अग्निष्वात्त पदका शतपथ से विरुद्ध मनमाना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध अर्थ किया है सो मिथ्या क्यों नहीं और ऐसा करनेसे स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञा का खण्डन क्या नहीं हो गया। इसका तुम क्या जवाब रखते हो।

२०-संस्कार विधि समावर्त्तन प्रकरणमें लिखा है कि "हाथमें जल ले अपसव्य और दक्षिण मुख होके (ओंपितरः शुन्धध्वम्) इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़े,, तुम क्या इससे भी जीवितों को जलदान मानोगे ?। यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छोड़े) को काटकर (पिताको भूमिमें लिटाके उस के मुख में जल छोड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो। क्या स्वा० द० के ऐसे लिखने से मरों का तर्पण मानना सिद्ध नहीं ?॥

२१-संस्कार वि० और पञ्चमहायज्ञ विधि में (पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः, मन्त्र से एक ग्रास दक्षिण में रखने को लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता और दक्षिण में क्यों धरा जाता है। क्या इससे मृत श्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ?॥

२२-(आम्राश्चसिक्ताः पितरश्चतृप्ता एकाक्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरों का तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरोंका श्राद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाथ में वेद पुस्तक लेके शपथ कर सकेगा कि वे श्राद्ध के लिये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं।

२३-(तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते। अथर्व० १८ २। ४८) यहां से ऊपर प्रद्यौ नामक तीसरा लोक है जिसमें पितर रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं और मन्त्र में कहे वे ही पितर हैं जिनके लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब क्या इस से जीवितों के श्राद्ध मानने का खण्डन नहीं होता॥

२४-सिद्धान्तशिरोमणि पु० को स्वा० द० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततःशेषाणि कन्याया यान्यहानि तु षोडश । क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम्) क्या यह कन्या के सूर्य में होने वाले कनागत श्राद्धों के लिये आर्ष प्रमाण पर्याप्त नहीं है ॥

२५-क्या तुम लोगोंने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया ? इससे कर्ण राजा से पहिले कनागत श्राद्ध नहीं थे । क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ तब कनागत श्राद्ध सनातन अनादिकाल से सिद्ध होने पर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं होगया ? । क्या अपनी ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन हो जाने से अब भी लज्जित नहीं होंगे ॥

२६-(श्राद्धे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ । शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है । अर्थ यह है कि शरद् नाम क्वार कार्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं । यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़के शरद् ऋतु के खास श्राद्धोंका प्रमाण होनेसे क्या इन कनागतोंका प्रचार पाणिनि आचार्य से भी पहिले अति प्राचीन काल से चला आना सिद्ध नहीं है ? ॥

२७-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्धका फल पिता को नहीं प्राप्त हो सकता तो —

मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्धंचेत्तृप्तिकारणम् ।
जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तो जीवित मनुष्य जब मुसाफिरीमें जावे तब घरके मनुष्य श्राद्ध द्वारा उस की तृप्ति मार्गमें क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्वाकके और तुम्हारे मतमें क्या भेद है ? । यदि कुछ भेद नहीं तो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ॥

२८-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तरमें श्राद्ध तर्पणका फल मिलनेका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण या उनके हाथ की रसीद

नहीं आती तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेवें। तब तुमसे पूछा जाता है कि अपने किये शुभाशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में अपने को मिल जाता है इसमें क्या प्रमाण है?। क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकतेहो। जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिकका मत (ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्) क्यों नहीं मान लेते?॥

२९–तुम कहते हो कि पितादिने बुरे कर्म किये तो उनको अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुत्र यदि उनको दुःखसे छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी ईश्वरकी इच्छा से विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारा ऐसा मन्तव्य है तो जीवित माता पिता गुरु आदिकी सेवा सुश्रूषा भी तुमको नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पिछले जन्मके कर्मों का जैसा २ शुभाशुभ फल ईश्वरने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए?। ऐसी दशामें जीवित माता पितादिकी सेवा भी तुमको छोड़नी क्यों नहीं पड़ेगी॥

३०–यदि कहो कि अन्यके द्वारा प्रत्यक्षमें तो फल मिल सकताहै परोक्षमें नहीं। तब हम पूछते हैं कि तुम अपने निज घरू स्त्री पुत्रादि की कोई वस्तु उठालेते समय क्या यह विचारते हो कि अन्यके वस्तु को लेनेका अपराध हमको लगेगा। यदि नहीं विचारते और ऐसा कहते मानते हो कि पुत्रादिका वस्तु अन्य का नहीं, किन्तु हमारा ही है। हमारे स्त्री पुत्रादि हैं अन्य नहीं किन्तु हम सब एक ही हैं। तो पुत्रादि जो उसके अंशरूप हैं उनको अन्य क्यों कहते मानते हो।

३१–जब कि (आत्मा वै पुत्र नामासि) (आत्मा वै जायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति और (गर्भोभूत्वेहजायते) (भार्यापुत्रः स्वकातनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्रसे पिताका अभेद वा एकता दिखाई है तब तुम कूटरूप भेद वा अन्य २ होने का झगड़ा क्यों लगाते हो॥

३२–क्या तुम पिताका अंश पुत्रको नहीं मानते। जब अवयवरूप है तो हाथ मिहनत करके रोटी बनाता, मुख चबाने महीन करनेमें श्रम करता है पर हाथ कुछभी नहीं खाता, मुखको स्वाद आता और पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेट को ही होता है तब अन्य हाथके किये कर्म का फल अन्य पेटको क्यों पहुंचता है। क्या इन हाथ मुख पेटमें लड़ाई कराओगे?॥

३३-तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्मका फल अन्य को नहीं पहुंचता तो यदि कोई राजा रईस दश लाख रुपया का किसी खासके नाम वा सभा के नाम वसीयतनामा कर जावे कि इस धनसे अनाथालय, सदावर्त्त, वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें। और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या उन कामोंसे होने वाले उपकारोंका फल उस धनदाता को जन्मान्तरमें नहीं मिलेगा यदि कर्त्ताओं को मिलना कहो तो उनका कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयतनामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा। फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से श्राद्धादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्रकृत श्राद्धादि का फल पिताको क्यों नहीं मिलेगा ?॥

३४-जब उत्सर्गापवादादि वा सामान्य विशेष की व्यवस्था को माने विना वेदादि किसी शास्त्र का काम नहीं चलता तो अन्यकृत कर्म का फल अन्य को नहीं होता। इसको उत्सर्ग वा सामान्य कथन मानके विशेषांशमें पुत्रादि सपिण्ड वा दौहित्रादि कृत श्राद्धादि का फल पितादिको पहुंचना अपवादरूप मानकर सब शास्त्रों का विरोध मिटजाता और व्यवस्था लगजाती है। ऐसा मान लेने में तुम्हारी क्या हानि है ?।

३५-यदि तुम नास्तिकों के सामने प्रत्यक्षादि से श्राद्धादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त श्राद्धादि के खण्डन का पाप अपने शिर लादते हो तो क्या उसी कायदे से तुम्हारे अन्य मन्तव्य वेदादिका खण्डन नहीं हो सकता।

३६-यदि तुम्हारा दावा हो तो अभ्युपगम सिद्धान्त को लेकर हम तुम्हारे वेदादि मन्तव्य के खण्डन करने का नोटिस तुमको देते हैं। तब क्या तुम वेदका मण्डन करने की शक्ति रखते हो ॥

३७-जब स्वामी शङ्कराचार्य जी तथा कुमारिल भट्टादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के साथ बड़े २ प्रबल शास्त्रार्थ करते हुए भी श्राद्धादि सत्कर्मों का त्याग वा खण्डन नहीं किया तो नास्तिकों के भयसे अपने वेदोक्त धर्म का त्याग करना क्या यह तुम्हारी निर्बलता नहीं है ॥ * इति। *

उपनिषद् का उपदेश ।

जिन विद्वानों ने स्वा० शङ्कराचार्य जी के संस्कृत भाष्य [जो उन्होंने उपनिषदों पर किया है] को देखा है उनसे यह छिपा नहीं है कि वेदान्त की गम्भीर से गम्भीर बातों पर उन्होंने कैसा प्रकाश डाला है। वस्तुतः बात तो यह है कि सचमुच संस्कृत साहित्य में उच्चसे उच्च भावोंका यदि कोई आकर है यदि सुगन्धिमय प्रसूनों की कोई वाटिका है तो वह उपनिषद् है, इन उपनिषदों पर शोपन हार, अरस्तू, आदि पाश्चात्य विद्वान् इतने मोहित हो गये थे कि उन्होंने इसकी प्रशंसा में पुल बांध दिये थे, इस बीसवीं शताब्दि में यूरूप और अमेरिका में हिन्दुधर्म का महत्त्व इन्हीं उपनिषदों के बल से स्वा० विवेकानन्द और स्वा० रामतीर्थ ने उन २ देशवासियों के हृदय में बिठा दिया है, प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह उपनिषदोंको पढ़े विचारे और मनन करे, इसमें कठ और मुण्डक उपनिषद् की स्वा० शङ्कराचार्य के भाष्य के आधार पर टीका की गई है, प्रारम्भमें विस्तृत अवतरणिका है जिसमें सभी जानने योग्य बातों का समावेश है मू० १) बंगभाषा में इसका बड़ा आदर है ।

षोडशसंस्कारविधि *

हिन्दी भाषा में अबतक संस्कारोंके विषय में सांगोपांग पुस्तक कोई नहीं छपी, द्विजातियों के लिये संस्कार बड़ी प्यारी वस्तु है और वर्तमान में संस्कारोंकी दशा प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ के यहां बड़ी शोचनीय हो रही है। शायद ही किसी भाग्यवान् के यहां पूरे पूरे सोलह संस्कार होते हों नहीं तो ४। ६ मुख्य २ संस्कारों का कर लेना ही आजकल मुख्य कर्तव्य समझा जाता है, इसमें एक कारण यह भी है कि संस्कारों की अबतक पूर्ण पुस्तक कोई नहीं छपी । संस्कार भास्कर आदि जो पुस्तकें बम्बई आदिमें छपी हैं वे संस्कृत में होनेसे सर्वसाधारण के उपयोगी नहीं ऐसी कठिनताओं को देख कर पं० भीमसेन जी शर्मा ने इस पुस्तक की रचना की है ऊपर मूल संस्कृत और नीचे भाषा में उन के करने की पूर्ण विधि लिखी गई है जिस के सहारे थोड़े पढ़े लिखे भी संस्कार करा सकते हैं, बड़ी उपयोगी पुस्तक है मू० २) है पर सर्वसाधारण के सुभीते के लिये की० घटाकर १॥) ही करदी है ।